नींव की ईंट

मानवता की कोमल अनुभूतियों
से पूर्ण, कलात्मक १४ कहानियाँ

लेखिका—
श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसैन जैन
प्रधान सम्पादिका—'दीदी'

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—आशाराम क्षत्रिय
रॉयल प्रिंटिङ्ग प्रेस
सहारनपुर

कहाँ क्या है ?

चन्द्रवती ऋषभसैन जैन

बस और क्या कहूँ ?

शैशव-काल से ही मैं नहीं जानती कैसे मुझ में एक संस्कार है, जीवन को आँख खोल कर देखने का। देखते-देखते जब भीतर भारी-सा एक संग्रह हो चला तो घर-गृहस्थी के सामान की तरह, उसे ठिकाने लगाने, व्यवस्थित करने की जरूरत पड़ी। मेरी क़लम का यह कार्य उसी व्यवस्था का रूप है और संक्षेप मे मेरे साहित्य का मनोविज्ञान और इतिहास यही है।

इन कहानियों में कल्पना के करिश्मों का अभाव है। ये सब मेरे या मेरे साथियों के जीवन की घटनाएँ हैं। इनके पात्र मेरी 'सृष्टि' नहीं है, मेरे 'कामरेड' हैं। वे मेरे साथ हँसे, खेले और रोये, और मैं उन में और वे मुझ में बराबर डूबे रहे। लिखते समय मुझे कभी नहीं लगा

कि मैं लिख रही हूँ। सन्दलसिंह से मैंने बातें कीं, चञ्चल से चुहल और अञ्जनहारी, ललिता एवं भींकती के साथ मैं रोई।

मेरे पास साहित्य का 'मीटर' नहीं है। मैं इन का साहित्यिक मूल्य जानती भी नहीं। किसी 'मूल्यवान भेंट' के रूप में, अभिमान के साथ, इन्हें लिये, इठलाते, मैंने साहित्य-भारती के मन्दिर में प्रवेश भी नहीं किया।

यह प्रेस का युग है। इस में सब कुछ छप जाता है। जानती हूँ, छपाई और मूल्य का कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्वान आलोचक और उन से भी आगे समय, मूल्य का सही निर्धारण करते हैं।

छिपाऊँगी नहीं, मुझ में प्रसंशा की चाह है। इन की कोई प्रसंशा करे तो मैं सुखी होऊँ, पर आलोचना के आलोक मे इन की अपात्रता ही सिद्ध हो तो मैं दुख न मानूं, क्यों कि जानती हूँ, समय के बहते प्रवाह पर छाप लगाने की क्षमता मुझ में नहीं है।

फिर भी यह प्रकाशन एक विडम्बना ही समझी जाए तो इस का भार हिन्दी के यशस्वी पत्रकार, साहित्य-बन्धु श्री ठाकुर श्रीनाथसिंह जी के हिस्से आएगा, जिन्होंने दर्जनों लम्बे-लम्बे प्रशंसा भरे पत्र लिख कर, बराबर मेरी हिम्मत बढ़ाई। हिन्दी के दूसरे अनेक प्रतिष्ठित पत्र सम्पादकों और विशेषतः वैज्ञानिक कहानियों के लेखक

और श्रेष्ठ समालोचक श्री प्रो० ब्रजमोहन गुप्त एम० ए० का स्नेह-सहारा भी इस में भागीदार है।

अपने भाई प्रभाकर जी के बारे में यहाँ कुछ कहने के लिये शब्दों की एक वेगवती धारा भीतर उमड़ी है, पर वे मानवता के मूक साधक हैं और नहीं चाहते कि मैं कुछ कहूँ। वे भारतमाता के उस कोटि के पुत्रों में हैं, जिन्हे पाकर किसी भी बहिन को फिर कुछ और पाने की इच्छा नहीं रहती।

बस और क्या कहूँ ?

शान्ति भवन, सहारनपुर
१ अगस्त १९४२ — चन्द्रवती ऋषभसैन जैन

लो, यह लो !

जीवन साथी !

यह सब आप की ही तो विभूति है कि मैं आज यहाँ आप को सम्बोधन कर रही हूँ और यह जो आज भारती के मन्दिर में मुझे भेंट लेकर आने का अवसर मिला है, इस में भी मेरी प्रतिभा और परिश्रम की अपेक्षा आप की अथक प्रोत्साहन-प्रेरणा की ही झलक है।

मैं बड़े घर में जन्मी-पली, बड़े घर में आई और बड़े घरों के वातावरण में मिली-जुली। जानती हूँ, इस क्षेत्र मे नारी का जीवन स्पेशल क्लास के क़ैदी से आम तौर पर कहीं अच्छा नहीं है। नारी की स्वतन्त्र सत्ता, मानवी आकांक्षाएँ और संक्षेप मे सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अपहरण कर यहाँ उसे सोने का शृङ्गार मिलता है, पर मैंने यहाँ सदा ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता अनुभव की है और पाया है कि आप की सारी आकांक्षाएँ, प्रेरणाएँ मेरे व्यक्तित्व के विकास की ओर ही अभिमुख रही हैं।

हम लड़े भी हैं, हम में मतभेद भी रहे है, पर जीवन के सिद्धान्तों के प्रति आप की ईमानदारी सदा अभङ्ग रही है और मेरी दृष्टि में यह साधारण बात नहीं है—हमारे आज के सामाजिक जीवन में, जहाँ नारी कर्तव्य में कुबेर होकर भी अधिकार मे 'इंसालवेण्ट' है, निश्चय ही असाधारण है।

मुझे गर्व है कि आप सही मायने में एक पुरुष हैं—सङ्घर्ष और शान्ति दोनों में आप की दृढ़ता समान रूप से अक्षुण्ण रही है, पर आप के पौरुष का अभिमान साम्राज्यवादी अँग्रेजों की तरह, साथी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व का संहार कर कभी शासक होने मे उत्सुक नहीं हुआ। उसे सदा ही साम्यवादी सोवियट की तरह स्वतन्त्र साथी के सहयोग की प्यास रही।

मुझ में आज जो कुछ रचनात्मक प्रवृत्ति है, यह उसी का फल है, पर नारी स्वतन्त्र हो कर भी उत्सर्गमयी है तो उस प्रवृत्ति का यह जो कुछ फल है, इसे मैं कहाँ रक्खू ?

लो, यह लो और अपने ही हाथों से, इसे भारत-भारती के मानस-मन्दिर मे भेंट कर दो !

आप इस से प्रसन्न हों और माँ भारती आशीष दे, मैं और यहाँ क्या चाहूँ ?

आप की ही तो—

चन्द्रवती

अन्तर-चित्र

"चाचा जी ! कहानी सुनाओ ।"

पगली सुधा ने 'ऑर्डर' की टोन में उस दिन कहा और फ़ौरन ही प्रबोध मचल पड़ा—"हाँ, एक मज़ेदार कहानी चाचा जी !"

शारदा और अशोक तो ऐसे मौक़े तलाश किया ही करते हैं। लाड़ में डूब कर, गुनगुनी आवाज़ में उनका भी हुक्म सादिर होगया—"सुनाओ चाँचाँ जी !" पर मैं कहानी-वहानी की मूड में न था और ये चारों भूत बने लिपट रहे थे। हिन्दुस्तान के चतुर स्यानों की तरह अपना भूत मैंने भाभी के सिर उतार दिया। अब हम पाँचों भाभी के सिर थे—"सुनादो एक कहानी।"

धीरे-धीरे बूढ़ी नानी की-सी टोन में रस ले-लेकर उन्होंने एक कहानी सुनाई। शुरू से लगभग अन्त तक हम जो समझते रहे, अन्त मे वह कुछ और ही हो गया। कहानी के रहस्य-गोपन की यह क्षमता मुझे असाधारण लगी।

"भाभी ! यह कहानी आप ज्यों की त्यों लिख दें तो एक बढ़िया चीज़ बन जाए !" दूसरे दिन उन्होंने एक कहानी लिखी—'मेरी चुटिया उसके हाथ मे थी !' पढ़ कर हम सब हँसे, सब ने उसे पसन्द किया और इस प्रकार हिन्दी के कहानी-क्षेत्र में श्रीमती चन्द्रवती ऋषभसैन जैन का प्रवेश संस्कार हुआ।

यह घटना हुए वर्षों बीत गये और आज एक श्रेष्ठ कहानी-लेखिका के रूप में वे हमारे बीच में हैं। उनकी प्रगति और सफलता का रहस्य इस बात मे छिपा है कि वे जो काम करती हैं, पूरी शक्ति के साथ और रस लेकर और यह कि उस समय उन्हे यह भूल जाता है कि दुनिया मे और भी कोई काम है।

स्कूल मे उन्होंने ड्राइङ्ग ली। कुछ साल बीते उनकी रुचि इधर फिर से झुकी। लखनऊ से एक आर्टिस्ट बुलाये गये और वे जुट गईं। आज उनकी विशाल कोठी स्वयं उनके बनाये पेण्टिङ्गस् से सजी है। उन दिनों ऐसा लगता था कि ये जन्म-जन्मान्तर से पेण्टर हैं और पेण्टिङ्ग इन का शौक़ नहीं व्यवसाय है। जिस स्त्री के सिर पर एक नये युग

के खासे बड़े परिवार की जिम्मेदारी हो, वह जब आठ घण्टे रोज़ ब्रुश, प्याली और रङ्गों की दुनिया में रमी रहे तो और क्या कहा जाए ?

उन की यह धुन कलात्मक या मनोरञ्जन के कार्यों तक ही सीमित नहीं है। यह उन के स्वभाव का अङ्ग है और प्रति दिन की गृह-व्यवस्था में हम इसे घुला-मिला पाते हैं। जब वे अपने अतिथि के लिये भोजन की व्यवस्था में लगी हों तो आप उन से कहानी के विषय में कुछ भी कहिये, उन्हें बधिर पायेंगे। एक धनी परिवार की अध्यक्षा हो कर भी एक दिन में तीन सेर पिस्ता और अढ़ाई सेर बादाम कतरने का उन का 'रिकार्ड' है और हमारे हलवाई बता सकते हैं कि इस रिकार्ड को 'बीट डाउन' करना आसान नहीं है।

लेखन मे भी इन की वही स्थिति है। अब उन का अधिकांश समय अध्ययन और लेखन मे जाता है। मोपासाँ, चेखव और प्रेमचन्द ये उन के प्रिय कलाकार हैं और कहानी उन का विषय। अब ब्रुश, प्याली और रङ्ग का स्थान सुन्दर फ़ाउण्टेन पैन और स्वान इंक ने ले लिया है और गत्तों के स्थान में सुन्दर पुस्तकें आ गई हैं।

एक दिन अपने ऑफ़िस में वे बैठी थीं। मैं आ गया तो बोलीं—"भैया, कहानी लिखने की मूड आ रही है, पर कोई प्लॉट नहीं सूझता। बताओ न !"

"सॉट ! जीवन में सॉट-ही-सॉट बिखरे पड़े हैं।"

इतने में एक भिखारिन आगई। मैंने कहा—"लो, एक सॉट यह है। अगर आप भिखारियों के जीवन की 'स्टडी' करें तो २५ मास्टर-पीस कहानियाँ लिख सकती हैं। बस उन के मस्तिष्क को मार्ग मिल गया और वह सप्ताह पूरा-का-पूरा भिखारी सप्ताह रहा। हरेक नौकर को आदेश मिला कि जो भिखारी मिले, बुला लाओ। कितने ही भिखारी-भिखारिन आये। भोजन कराया, बातें कीं। वे स्वयं भिखारियों के तमाम अड्डे देख आईं। रात-दिन एक ही चिन्ता, एक ही विचार और एक ही धुन—भिखारी, भिखारिन और भिखारी-जीवन !

इस धुन में एक सृष्टि हुई—'झींकती भिखारिन' ! यह कहानी इतनी सुन्दर, भावमय और कलात्मक है और साथ ही जीवन के सरल स्नेहमय स्पर्श से परिपूर्ण कि साधारण पाठक से लेकर कला-पारखी समालोचक तक उस की वेगमयी रस-धारा मे परिप्लावित हुए बिना नहीं रह सकता।

लेखिका सम्पूर्ण वातावरण में अपने पात्रों के साथ रही है—झिलमिल झाँकी के रूप में नहीं, साक्षात् कहानी-लेखिका के रूप में, दृढ़ पहरेदार-सी। कला की कोमल छुई-मुई, कलाकार के इस क्रूर 'पिकेटिङ्ग' का स्वागत नहीं करती। दिव्य-दर्शी रवीन्द्रनाथ ने अपनी

'असम्भव बात' जैसी कहानियों में इस के अपवाद की सृष्टि की है, जहाँ कलाकार दूर से ही खड़ा दिखाई देता है, पर वह कला की छाया में नहीं जाता, कला स्वयं उसकी छाया ग्रहण करती है। यह प्रसन्नता की बात है कि उस दिव्यात्मा का आशीर्वाद ग्रहण कर लेखिका अपनी स्वतन्त्र सत्ता का लोप और कला की आत्मा का संहार किये बिना गीता में संजय-सी अपनी 'झींकती भिखारिन' में खड़ी है। यह उस कोटि की कृतियों में है, जो कलाकार को जनता के हृदयों तक पहुँचने मे वाहन का उत्तरदायित्व वहन करती है।

यहीं उन की 'अञ्जनहारी' की चर्चा करना उचित होगा। उन के शयन-कक्ष में एक अञ्जनहारी ने मिट्टी के छै घर बनाये और अण्डे रक्खे। सातवाँ घर बना कर, उस में रखने को जब वह अण्डा ला रही थी तो बिजली के पंखे से टकरा कर कट गई। बस इतनी-सी बात है इस कहानी मे और कोई भी कह सकता है कि यह क़तई साधारण बात है, पर लेखिका के हृदय की कोमलता, सहृदयता और मातृत्व का रस पान कर यही बात इतनी असाधारण होगई है कि वह हमारे साहित्य को यह स्वर्ण भेंट दे सकी। मैं इस कृति को उन की सर्वोत्तम कृति मानता हूँ और मेरा विश्वास है कि अँग्रेजी, जर्मन या फ्रेंच भाषा में हिन्दी कहानी का सही प्रतिनिधित्व करने के लिये

२५ कहानियाँ चुनी जाएँ तो यह आसानी के साथ उन में स्थान पा सकेगी ।

अपनी भूमिका में उन्होंने कहा है—

> "इन कहानियों में कल्पना के करिश्मों का अभाव है । ये सब मेरे या मेरे साथियों के जीवन की घटनाएँ हैं । इन के पात्र मेरी 'सृष्टि' नहीं है, मेरे 'कामरेड' हैं । वे मेरे साथ हँसे, खेले और रोये । मैं उन मे और वे मुझ मे बराबर डूबे रहे । लिखते समय मुझे कभी नहीं लगा कि मैं लिख रही हूँ । सन्दलसिंह से मैंने बातें कीं, चञ्चल से चुहल और अञ्जनहारी, ललिता और झींकती के साथ मैं रोई !"

अपने पात्रों के साथ उन का यह तादात्म्य ही उन की सफलता की कुञ्जी है । यह तादात्म्य उन्हें अपने हृदय की सहानुभूति का उत्सर्ग अपने पात्रों के प्रति करने में सहायक होता है । उन के व्यक्तिगत जीवन में सहानुभूति, सहृदयता और स्नेह का यह अखण्ड भण्डार उन्हे प्रकृति से मिला है । विगत बीस वर्षों मे, वे बराबर फूलों में रही हैं, पर वे अपने हाथ से कोई फूल तोड़ नहीं सकतीं । उन में अनेक बार इस अभिलाषा का उदय हुआ है, वे वृक्ष के पास तक गई हैं, मन ने प्रेरणा की है, पर उन के संस्कार ने अँगुलियों को सहारा नहीं दिया । उन के शरीर पर काटते मच्छर को भी कोई उन की जानकारी में नहीं मार सकता

और छूत की भयङ्कर बीमारियों में, अपने जीवन और बच्चों के लिये ख़तरा उठा कर भी उन्होंने रात-दिन अपने नौकरों की सेवा की है। 'अञ्जनहारी' की 'मैं' और कोई नहीं, स्वयं उस की लेखिका है और व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण मैं कह सकता हूँ कि वह उन के जीवन में बीती घटना की अक्षरशः रिपोर्ट है। अपनी कहानियों में अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर लेखिका स्वयं ही लेखिका और स्वयं ही जीव-ब्रह्म के ऐक्य की तरह पात्र भी है।

झींकती, अञ्जनहारी, ललिता, सन्दलसिंह की पत्नी, आशाराम और अपने दूसरे पात्रों के सुख-दुख की छाया उन के मन पर पड़ी और उसे उन्होंने अपना ही सुख-दुख समझा, यह उन की मानवता का चित्र है और उस छाया को अपनी क़लम के सहारे वे काग़ज़ पर ज्यों-का-त्यों उतार पाईं, यहाँ वे कलाकार हैं। उस छाया को काग़ज़ पर ज्यों-की-त्यों उतारने में उन की क्षमता असाधारण है और इस असाधारणता का चरम उत्कर्ष इस बात मे है कि अनुभूति की इस धारा के मन से काग़ज़ तक आने में न तो कल्पना की रङ्गीनियाँ ही उस में इस मात्रा में मिल जाती है कि वह एक स्वप्न रह जाता और न उसमें इतनी छूट रह जाती है कि वह देवता की खण्डित मूर्ति-सी आँखों में खटके।

इस प्रकार चन्द्रवती हमारे साहित्य में जीवन का प्रतिनिधित्व करती हैं—न उन्हें स्वर्ग का छोर पृथ्वी के

आँचल से बाँधने की धुन है, न समाज-सुधार का झण्डा ही उन के हाथ मे है। वे एक मानवात्मा हैं और मानव की दृष्टि से संसार को देखती हैं। जो देखती हैं, वह उन्हें प्रभावित करता है और उसे वे सँवार कर साहित्य में रख देती हैं।

अपनी भूमिका में बहुत सुन्दर ढङ्ग से उन्होंने अपने साहित्य की आधार भूमिका निर्देश कर दिया है—

> "शैशव-काल से ही मै नहीं जानती कैसे मुझ मे एक सस्कार है, जीवन को आँख खोल कर देखने का। देखते-देखते जब भीतर भारी-सा एक संग्रह हो चला तो घर-गृहस्थी के सामान की तरह, उसे ठिकाने लगाने, व्यवस्थित करने की ज़रूरत पड़ी। मेरी क़लम का यह कार्य उसी व्यवस्था का रूप है और संक्षेप में मेरे साहित्य का मनोविज्ञान और इतिहास यही है।"

उन की कहानियों का वातावरण प्रायः ऊँचे धरातल का है, यह उनकी सांसारिक परिस्थिति का परिणाम है, पर ऊँचाई के उन रेगिस्तानी टीलों पर उन्होंने अपने परिश्रम से जो वृक्ष लगाये, वे शोषण के एरण्ड नहीं, वातावरण मे कोमल सुरभिका संचार करने वाले कदम्ब है, जिन की छाया मे थकी, पीड़ित और कराहती मानवता को शीतल विश्राम की फुहारें मिली हैं।

उन की सांसारिक परिस्थिति को हम समझ लें।

अपने समय के प्रख्यात पुरुष-रत्न स्व० सर डाक्टर मोतीसागर की वे पुत्री हैं, जो आरम्भ में पंजाब के 'सीनियर मोस्ट' एडवोकेट थे, बाद में तीन बार हाईकोर्ट के जज रहे और अन्त में देहली यूनिवर्सिटी के वायस चांसलर हुए। अपने पिता की प्रतिष्ठा के अनुरूप, उत्तर भारत के प्रसिद्ध बैङ्क व्यवसायी भगवानदास वंश के रत्न श्री ऋषभसैन जैन के साथ उन का विवाह हुआ।

इस प्रकार लक्ष्मी के छम-छम वातावरण में वे जन्मीं, पलीं, बढ़ीं और रहीं, पर इस छम-छम वातावरण में सरस्वती के विरोध की भावना न थी—दूसरे शब्दों में उन्होंने चाँदी और स्वर्ण-जटित सिंहासन पर माँ भारती की प्रतिमा का पूजन देखा। जीवन के आरम्भ में जब उन की होश ने पहली अँगड़ाई ली तो अपनी टुकुर-टुकुर आँखों से उन्होंने जहाँ मुवक्किलों की जेब से निकल कर हज़ारों रुपये अपने पिता की मेज़ पर छनकते देखे, वहाँ सुनहरी जिल्दों से जड़ी पुस्तकों से भरी अलमारियाँ भी देखीं और यह तो स्पष्ट है कि उन के बाल मन पर दोनों की ही छाप पड़ी।

उनके जीवन-सङ्गी श्री ऋषभसैन, जिनके वातावरण में बढ़ कर उन की मनोवृत्तियों का विकास हुआ, स्वयं एक विद्वान और व्यवस्थापक हैं। कॉलिज की शिक्षा के साथ उन्होंने विश्व-साहित्य का जो अध्ययन और संग्रह

किया, वह गौरव-पूर्ण है। उस अध्ययन का प्रभाव आज भी उन के जीवन में व्याप्त है और वे स्वयं एक अच्छे लेखक हैं। हिन्दी के कई विद्वानों ने उन के लेखों की अच्छी प्रशंसा की है।

उन का गृहस्थ-जीवन अत्यन्त मधुर, व्यवस्थित और ऊँची श्रेणी का है और उस में वे किस मात्रा में ओत-प्रोत हैं, यह 'अञ्जनहारी', 'मेरी चुटिया उस के हाथ में थी', 'ग़रीब का ईमान' और 'जब घर में चोर था' में उन का जो उल्लेख हुआ है, उस से स्पष्ट है और अपने समर्पण मे उन के चरित्र के लिये जो प्रमाण-पत्र लेखिका ने उन्हे दिया है, वह विश्व-विद्यालय के प्रमाण-पत्र से कहीं अधिक प्रमाणिक है—

> "हम लड़े भी हैं, हम मे मतभेद भी रहे हैं, पर जीवन के सिद्धान्तों के प्रति आप की ईमानदारी सदा अभङ्ग रही है और मेरी दृष्टि मे यह साधारण बात नहीं है—हमारे आज के सामाजिक जीवन में, जहाँ नारी कर्तव्य में कुबेर होकर भी अधिकार मे 'इंसालवेण्ट' है, निश्चय ही असाधारण है।
>
> मुझे गर्व है कि आप सही मायने में एक पुरुष हैं—सङ्घर्ष और शान्ति दोनों में आप की दृढ़ता समान रूप से अक्षुण्ण रही है, पर आप के पौरुष का अभिमान साम्राज्यवादी अँग्रेजों की तरह, साथी के

स्वतन्त्र व्यक्तित्व का संहार कर कभी शासक होने में उत्सुक नहीं हुआ। उसे सदा ही साम्यवादी सोवियट की तरह स्वतन्त्र साथी के सहयोग की प्यास रही।"

मातु श्री श्रीमती सेवतीदेवी—लेखिका की सासु—का यहाँ उल्लेख न करना, इस विवरण में अपूर्णता की सृष्टि करेगा, जिन्होंने बीते युग का प्रतिनिधि हो कर भी अपनी 'बहू' की नवयुग-प्रवृत्ति को सदैव प्रोत्साहन दिया और जिन की छाया में आज भी वे मातृ-अङ्क की निर्द्वन्द्व उत्फुल्लता का उपभोग पा उन का मन विशालता की लहरें लिया करता है।

लेखिका के व्यक्तित्व-विकास की कुञ्जी यही है और इसी से हम जान सकते हैं कि वैभव के उस वातावरण में मानवता के कणों का यह प्रकाश कैसे फैला?

लेखिका के शब्दों मे 'इन कहानियों में कल्पना के करिश्मों का अभाव है!' पर विविध मनोवृत्तियों का चित्रण सुन्दर और सही हुआ है और उस से चन्द्रवती के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की गहराई हम माप सकते हैं। उन के सभी पात्र जीते-जागते हैं, साहित्यिक सजीवता की दृष्टि से ही नहीं, सांसारिक जीवन की दृष्टि से भी। उन की मनोवृत्तियों का ठीक चित्रण करने में, व्यक्तिगत सम्पर्क और अनुभूति के कारण लेखिका को पर्याप्त सुविधा प्राप्त हुई है और उन के हृदय की समवेदना शीलता ने उन्हें

अपने पात्रों में, रूप में शृङ्गार-सी, इस तरह मिला दिया है कि उस का वातावरण सर्वत्र कृत्रिमता के कल्मष से अछूता रह, स्वाभाविकता की सरिता में अवगाहन कर दीप्तिमान हो उठा है, इस हद तक कि स्थान-स्थान पर सङ्केत हो उठता है, हम कहानी पढ़ रहे है या किसी घटना का विवरण।

एक बात और, वे स्वयं स्त्री हैं, स्त्री के सुख-दुख, अभिलाष का उन्हे परिचय होना ही चाहिए, इस लिये उन की कहानियों मे नारी के हृदय का प्रतिनिधित्व बहुत उच्च कोटि का हुआ है। झाँकती, परी, शबनम, चञ्चल, ललिता, सन्दलसिंह की पत्नी और मञ्जुला, उन के क़लम-शिल्प के सुन्दरतम नमूने हैं, जहाँ उन्होंने नारी हृदय को साकारता दी है, पर पुरुष के सुख-दुख, अभिलाष का फ़ोटो उतारने में भी उन की सूक्ष्मस्पर्शी क़लम नहीं चूकी। एक पुरुष के नाते मैं कह सकता हूँ कि पुरुष के साथ उन्होंने कहीं अन्याय नहीं किया। सूरदास, लाला जी, रहमत, सन्दलसिंह, भैया, बलदेवदास, धीरजसिंह, भोलाराम और जंगू भी उन के उतने ही सफल चित्र हैं।

चन्द्रवती बातचीत में सरल हो कर भी बहुत साफ़ हैं। गोलमाल या उलझा उत्तर उन के मन की बात नहीं। अपनी कहानियों मे भी उन के इस स्वभाव का प्रस्फुटन हुआ है। और स्थान-स्थान पर उन्होंने जो सम्वाद लिखे

हैं, वे जोरदार, स्पष्ट और मर्मस्पर्शी हैं और मेरा विश्वास है कि वे किसी कलापूर्ण फ़िल्म के लिये बहुत सुन्दर 'डायलॉग' लिख सकती हैं। मैं उन के सम्वादों को उन की कहानियों की एक विशेपता मानता हूँ और अत्यन्त नम्रता के साथ निवेदन करना चाहूँगा कि इस विषय में हिन्दी की कोई कहानी-लेखिका, अभी तक उन से 'मैच' नहीं करती।

वे लाहौर मे पलीं और देहली में जन्मीं। इस तरह उन की भाषा पर इस वातावरण का प्रभाव पड़ा और बाद मे उन्होंने जैन-साहित्य का अध्ययन अनुवादों के रूप में किया और फल-स्वरूप उन की भाषा का शरीर उर्दू की सरलता से निर्मित हुआ और उस में संस्कृत की सरस आत्मा प्रतिष्ठित हुई। बाद में उन्होंने हिन्दी-हिन्दुस्तानी के विवाद में दिलचस्पी ली और बाद की कहानियों में हिन्दी-पक्षपाती होने के कारण, उन के विश्लेषणों में उच्च कोटि की हिन्दी का भी दर्शन हमें मिला। सब मिला कर उन की भाषा सरल, सरस और सर्वत्र प्रवाह-पूर्ण है। उस मे ओज भी है, चोज भी है और उस ने उन की कहानियों को निखार दिया है।

अपनी भाषा में उन्होंने पुराने मुहावरों का नये रूप में, नई शक्ति के साथ प्रयोग किया है और नये मुहावरों का निर्माण भी किया है। 'वे तीन दिन' में एक स्थान पर आया है—"चञ्चल की अभिरुचि का पता

लगाना, खुदा के सिर पर मौड़ बाँधना था !" यह उन की अपनी विशेषता है। नई उपमाओं का निर्माण और प्रयोग दोनों दृष्टियों से उन का स्थान सम्मान पूर्ण है। ये उपमाएँ उन्होंने हमारे नये युग से ली हैं और उनका फ़िटिङ्ग इतना सही है कि कोई भी 'वर्कशाप' उस पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करेगा। 'झींकती' और 'सूरदास' के मिलन को उन्होंने दो विभिन्न दिशा से आने वाली गाड़ियों की तरह कहा है और 'अञ्जनहारी' में एक स्थल पर उन्होंने 'टारपीडो' के वातावरण का लाभ लिया है, जो अत्यन्त सुन्दर है।

उन की शैली की एक विशेषता, जिस ने मुझे प्रभावित किया, यह है कि उस मे कहीं कृत्रिमता नहीं है, निर्झर के निर्मल प्रवाह की भाँति, वे जो कुछ मन में है, उसे कह देती हैं, कहती चली जाती हैं। अपनी भावना के लिये, उन्हे भाषा, उपमा, जोर, सुन्दरता या दूसरा कुछ भी 'गढ़ना' नहीं पड़ता, तन्मयता की 'मूड' में उस का उद्गम होता रहता है और वे सिर्फ़ सँभाल कर उसे काग़ज़ पर ले लेती हैं। यही कारण है कि उन की कहानियों में कहीं उलझाव नहीं है और पढ़ते समय हम उन की कहानियों में साक्षात् घटी घटनाओं की तरह रम रहते हैं, रस लेते हैं और पात्रों के सुख-दुख की भाव-गङ्गा में अवगाहन कर पाते हैं।

'झींकती' में चौराहे पर बैठा सूरदास, भोजन के बाद कहता है—

"ले, हाथ इधर करना !"

झींकती ने अपना हाथ सूरदास के पास किया और उस ने चुपके से उस पर दो पैसे रख दिये।

"जा, अपने लिये दही बूरा लेती जाना।"

पैसे वापस लेने का आग्रह करते हुए झींकती ने कहा—"मैं यों ही धेली रोज़ चाटा करूँगी तो यह घर कितने दिन चलेगा ? और फिर तुम कुछ खा लो तो ठीक भी है, सारे दिन गला फाड़ते हो। मुझे कहाँ हल में जुड़ना है ?"

दोनों पैसे उसी की मुट्ठी में दबाते हुए सूरदास ने कहा—"जा, जा, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ़ खा लेना। बावली ! जो खा-पहन लो, वही अपना है।"

झींकती आसमान में उड़ी-सी चली। उस का रोम-रोम जैसे रेडियो बन कर बोल रहा था—"हूँ ! जैसे मैं कोई बालक हूँ, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ़ खा लेना !" और तृप्ति के रस में डूबे उस के ओंठ खिल पड़े !

हमारे दाम्पत्य-जीवन की कितनी सुन्दर, पूर्ण और मधुर झाँकी है। बातें करते सूरदास और झींकती जैसे हमारी आँखों में घूम जाते हैं।

'वे तीन दिन' में सुन्दरसिंह चञ्चल वेश्या के घर दो बार आया और गाना सुन, रुपये लुटा, बिना उस में कोई दिलचस्पी लिये, उधर देखे, चला गया।

तीसरी बार भी वही बात। इस बार चञ्चल के गर्व की गाँठ खुल गई और खुद मुँह फोड़ कर उस ने चलते-चलते सुन्दर से कहा—

"क्या मैं जनाब के बारे में कुछ जान सकती हूँ ?"

"हाँ, हाँ, नाम सुन्दरसिंह, काम माल बाबू और शौक़ सा-रे-गा-मा !"

"अब कब तशरीफ़ लाइयेगा ?"

"जब पैर धड़ को उठा लाएँ और तबियत मे उमङ्ग हो।"

"तब भी तो ?"

"कल ही, दस दिन में या फिर कभी नहीं !"

यह एक पुरुष का सही चित्र है—निर्द्वन्द, निर्लिप्त, अभङ्ग-दृढ़ ! इस सम्वाद की गहराई समझने और रस लेने के लिये यह आवश्यक है कि नर के प्रति नारी के आकर्षण का मनोवैज्ञानिक आधार हम जाने !

बस एक और,

"तुम दिल्ली की सैर करते रहे मियाँ रहमत, और तुम्हारी शबनम की शादी भी हो गई ! वो बाजे बजे और दावतें उड़ीं कि लुत्फ़ आ गया !"

अपनी दूकान का सामान ख़रीद कर दस दिन बाद जब देहली से रहमत लौटा तो चुटकियाँ लेते हुए उस की भावज ने कहा। रहमत के लिये यह एक मज़ाक थी, वैसे ही उस ने उत्तर दिया—"और बेचारी शबनम की शादी देख कर तुम जैसी बुढ़िया को भी रश्क हुआ। क्यों भाभी, है न यही बात ?"

"मुझे क्यों रश्क होगा। मेरे तो छः फ़ीट का गुड्डा बालों में ख़िज़ाब लगाये घूमता है। रश्क होगा भैया तुम्हें, जो सिर पर मौड़ बाँधने को पागल हुए फिरते थे, पर शबनम ने जिन की बात भी न पूछी।"

"जब मेरे सिर पर मौड़ बँधे और शबनम दुलहन बनी शर्माती डोले से उतरे, तब तुम छींक देना और अपने गुड्डे को भी सूंघनी सुघा देना !"

हमारे परिवार मे भाभी जीवन का स्रोत है। वह बड़ी है, पर श्रद्धा के बोझ से हमें नहीं दबाती। हम उस के सामने छोटे हैं, पर अपनी लघुता का पाठ हमें नहीं पढ़ना पड़ता। वह अपने स्नेह का दान करती है, बहिन के रूप में, पर साथी के रूप में साथ ही हँस-बोल कर। वह कोरा सत्य नहीं है, सत्य और नीति का मधुर समन्वय है। ऊपर के सम्वाद में देवर और भाभी का जो चित्र है, वह हमारा प्रति दिन का देखा है और हम उस में अपने जीवन की छवि देख सकते हैं।

उन के जीवन में इधर आध्यात्मिक परिवर्तन की लहरें आ रही हैं। अब वैभव भरे वातावरण की झम-झम में उन का अन्तर नहीं उलझता और उन्हें आश्रम के स्वप्न आते हैं—यह जीवन भर क्षण-क्षण साथ रहे रज की सत्व के प्रति प्रतिक्रिया है।

उन के जीवन में जो यह आध्यात्मिक परिवर्तन हो रहा है, उस का मनोवैज्ञानिक आधार है उन का ईश्वर-विश्वास। अपने छोटे-से पूजा-मन्दिर में बैठ कर जब वे भगवान का ध्यान करती हैं तो बच्चों का कोलाहल और पुकार भी उन के कानों को आन्दोलित नहीं कर पाते। चिरकाल से जैसे वे भगवान की शरणागति का अभ्यास करती रही हैं और दिन-दिन उन की सांसारिक परिस्थितियों के कारण जीवन में व्याप्त 'रज' घुल-घुल कर 'सत्व' में लीन होता रहा है।

उन के जीवन में निर्णायक स्वप्नों का एक विचित्र क्रम रहा है, समय-समय पर उन के जीवन में जो बड़े परिवर्तन आये हैं, उन में सदा ही स्वप्नों का निर्देश काम करता रहा है। यह उन के जीवन की एक दैविक घटना है और इसी शृङ्खला मे उन के आज के आध्यात्मिक परिवर्तन का अङ्कुर-विकास हम देख पाते हैं।

इस प्रतिक्रिया के दो रूप हैं। एक साहित्यिक और दूसरा सामाजिक। साहित्यिक रूप यह कि अब अपनी

कहानियों में वर्णन और चित्रण के साथ वे विश्लेषण की ओर अभिमुख हो चली हैं। हमारे देश में पुरुष बुरी तरह स्त्रियों को घूरते हैं। देश भर की शिक्षित-अशिक्षित स्त्रियाँ, इस के लिये पुरुषों को कोसती हैं और हम पुरुष स्वयं अपनी हीनता अनुभव करते हैं, पर अपनी 'धवल छत्र की छाया में' कहानी की भूमिका में चन्द्रवती जी ने इस का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर के इसे पुरुषों के लिये लांछन मानने से इंकार कर दिया है। सम्पूर्ण पुरुष जाति को इस के लिये उन का कृतज्ञ होना चाहिए।

'भैया की डायरी' और 'ग़रीब का ईमान' में भी कई जगह उन्होंने अपनी इस प्रवृत्ति का सूक्ष्म प्रदर्शन किया है। हम चाहेंगे कि उनकी यह प्रवृत्ति अधिक विकास ले और उस से हमारी हिन्दी के कहानी-साहित्य मे सत्य और शिव की सृष्टि हो।

'जीवन-कला-मन्दिर' की आयोजना, उस प्रतिक्रिया का सामाजिक रूप है। इस संस्था की अभी आरम्भिक रूप-रेखा ही सामने आई है, पर उसी के सहारे मैं कह सकता हूँ कि अगले दस वर्षों मे यह संस्था अपने ढङ्ग पर उत्तर भारत मे छोटे शान्ति-निकेतन का-सा स्थान और सम्मान ग्रहण करेगी। बालक, नारी, दलित और साहित्य उस के ये चार विभाग हैं। इधर उस के अधिष्ठाता के रूप में चन्द्रवती जी ने हमारे घरेलू नौकरों के सम्बन्ध मे कुछ

परीक्षण किये हैं कि कैसे उन के जीवन का मानदण्ड ऊँचा उठे और बालकों के सम्बन्ध में श्री ऋषभसैन जी ने कि उन का विकास सुगम हो। ये सब प्रवृत्तियाँ इस बात के सङ्केत हैं कि मानवात्मा की सेवा की पुकार उन के भावुक हृदय तक पहुँच गई है और निकट भविष्य मे उन के द्वारा हमारी संस्कृति, हमारे समाज और हमारे साहित्य के लिये कुछ विशिष्ट कार्य होने को है। मैं जानता हूँ, उन के साधन विस्तृत हैं, उन की सङ्गठन-शक्ति सबल है, उन में सूझ है और भगवान की कृपा उन के सिर पर है। मेरा विश्वास है कि सफलता निश्चय ही उन के द्वारदेश का आश्रय ग्रहण करेगी और अपने उद्देश्य की पवित्रता और ऊँचाई उन्हे दिन-दिन बल देगी।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

नींव की ईंट

झींकती भिखारिन

१

सड़क पर पड़े ढेले के पीछे भी एक इतिहास है और उस के जीवन की भी एक कहानी है। इधर-उधर उड़ते छोटे-से पीले पत्ते के पीछे भी एक इतिहास है और उस के जीवन की भी एक कहानी है, तो झींकती के पीछे भी एक इतिहास होगा और उस के जीवन की भी एक कहानी है।

पर कहानी-लेखिका का काम किसी के जीवन की घटनाओं के सन्-संवत इकट्ठे करना नहीं है और न उसे साल-साल के व्यौरों की प्रदर्शिनी ही करनी है। वह तो कहानी-लेखिका है और उस का काम जीवन के विशाल बिखरे पृष्ठों में से थोड़ा-सा संग्रह करके बाक़ी 'सब' को छोड़ देना है।

वह 'सब' भी बहुत उपयोगी है, पर जीवन में उपयोगी तो खाद भी है और रेखाएँ भी। कलाकार सिर्फ उन पतली रेखाओं का ही उपयोग करता है और किसान के लिये यह सब ऊल-जलूल बातें हैं। उसे जीवन मे बस खाद का ही उपयोग करना है।

झींकती का असली नाम झूमकी था। वह कब और कहाँ माँ के पेट से इस धराधाम पर उतरी और कैसे घर के ममता भरे वातावरण से छूट कर भिखारिन बनी, इस का लेखा-जोखा मैं नहीं दूँगी। झूमकी अब झीकती है, भिखारिन है, बस यहीं से मेरी कहानी का आरम्भ है।

झींकती ने जिस दिन भिखारी-जीवन मे प्रवेश किया, उस का एक मनोरञ्जक संस्मरण है। रामदीन की दोनों आँखें जन्म से ही अन्धी थीं। चढ़ती उम्र, भरा बदन और पक्का रङ्ग। गला लोचदार न हो तो सूरदास क्या? वह रेलवे रोड के चौराहे पर, पेड़ के नीचे बैठता और सुबह से शाम तक रट लगाता था। उस के गले में कुछ ऐसा दर्द था और उस की जन्म-कुण्डली में ग्रहों का जमाव कुछ इस तरह हुआ था कि उसे देख कर बड़े-बड़े कंजूसों की अँगुलियाँ बटवे से टकरा जाती थीं।

झींकती ने उसे देखा और धीरे से आकर वह उस के पास बैठ गयी; लगी-लगी-सी, कुछ बची-बची-सी, सङ्कोच

में लिपटी, आकाशबेल-सी लहराती, बल खाती और सकुचाती।

"सूरदास, तुम कहाँ रहते हो ?"

"माई, भिखारी का क्या रहना ? भगत मङ्गलदास की बगीची मे पड़ा रहता हूँ। और भी बहुत से फ़कीर वहाँ रहते हैं।"

"तुम्हे यहाँ कौन छोड़ जाता है सूरदास ?"

"कौन छोड़ जाता माई, और कौन लेजाता ! टटोलता हुआ सुबह आजाता हूँ और शाम को चला जाता हूँ।"

"और जो कहीं ठोकर लग जाय ?"

"ठोकरें खाने को तो अन्धे का जन्म-ही होता है माई !"

"हाय-हाय, सूरदास ! तुम ऐसी बातें क्यों करते हो ?" झींकती का मन करुणा से भीग गया और न जाने कब और कैसे उस का दाहिना हाथ सूरदास के कन्धे पर जा टिका। सूरदास का रोम-रोम जैसे एक मीठे कम्प से भर गया और झींकती के मन में जैसे युग-युग की सोई एक आकुल प्यास जाग उठी। उसका शरीर अनजाने सरक कर सूरदास के और भी पास हो आया।

अब झींकती का घुटना सूरदास के घुटने से मिला था और उस का हाथ धीरे-धीरे सूरदास की कमर पर

लोरियाँ-सी दे रहा था; जैसे मास्टर अपने लड़के शिताबी पर हिप्नोटिज्म के पास कर रहा हो।

"सारी दुनिया की दौलत एक तरफ़ और आँख की दौलत एक तरफ़। आँखें वालो! इस अन्धे की तरफ़ भी देखते जाना!"

सूरदास अपने भिक्षा-आन्दोलन का यह नारा बीच-बीच मे लगा देता था। आज उस के फेफड़ों मे उमङ्ग की जो उभरन थी, उस ने उस के गले के लोच को और भी दोबाला कर दिया था।

उसके भीतर—मन के आँगन मे—कल्पनाओं की पुतलियाँ नाच रही थीं और पलक मारते न जाने कितने हवाई महल उसने खड़े कर लिये थे।

अब सारे भिखारी उस की किस्मत पर रश्क करेंगे और वह राजा की तरह रहेगा। क्या ज़रूरत है उसे कि अब वह सन्तराम और नन्दा, भिखारीदास और गिरधर के सामने एक-एक टुकड़े को हाथ पसारे। अब उस के यहाँ बाक़ायदा भोजन बनेगा और उसी से ये लोग टुकड़े माँगेगे। मैं बैठ कर रोटी खाऊँगा और यह पङ्खा झलेगी।

थोड़े दिनों मे गोपालजी की कृपा से लड़का हो जाएगा और मेरे पेट पर बैठा खेला करेगा। अब भी भगवान की दया है, धेली रोज़ फटकार ही लेता हूँ।

खा-पीकर तीन बिस्सी रुपये जोड़ लिये हैं। फिर तो बच्चे को देख कर लोगों में और भी दया उपजेगी। दिन भर में एक डब्बल चतुर्भुजी फटकार दिया करूँगा और बस अलग कुटिया बना लूँगा।

उस की अन्धी आँखों में जैसे रोशनी उतर आई।

झींकती खामोश थी, पर खामोशी की इस धुरी पर विचारों का पहिया बराबर घूम रहा था। उस के अँधेरे अन्तर की अमा मे आज जैसे दीपावली जगमगा उठी थी।

अब उस का भी कोई अपना है। आँखें नहीं हैं तो क्या, कैसा सुन्दर है सूरदास ! क़िस्मत का धनी है; पैसा-ही-पैसा बरसता है दिन भर ! अब तक तो जो कमाता है, उड़ा देता होगा। अब मैं देख-भाल कर ख़र्च करूँगी और एक पैसा ख़र्चूंगी तो एक बचाऊँगी। घर में दुख पहले है, सुख पीछे। ठण्ड लग जाए, आजाए बुख़ार, चार दिन पड़ना पड़े, तो क्या मैं माँगती फिरूँगी !

भीतर का सन्तोष उस के चेहरे पर चमक आया। चिर अतीत मे, समारोह भरी सभा के बीच, जीवन-साथी का स्वयंवर कर, नारी को यह सन्तोष, इस मात्रा में मिला होगा या नहीं, कहानी-लेखिका के लिये यह कहना कठिन है।

शाम को सूरदास चला तो झींकती ने उस की लाठी अपने हाथ में लेली। सूरदास आज जैसे हवाई जहाज़ पर

चढ़ा चला जारहा था। मङ्गलदास की बगीची में आज की सन्ध्या सूरदास के भाग्य की चर्चा में डूब गयी।

इस चर्चा में प्रसन्नता और ईर्ष्या की दो तहें थीं। ऊपर प्रसन्नता की और नीचे ईर्ष्या की। कहीं-कहीं तो नीचे की तह इतनी उग्र थी कि वह ऊपर की तह को बेध कर झाँक चली थी, पर सूरदास का आज इधर ध्यान न था।

उसने अपनी फतुही की जेब से दिन भर की कमाई निकाल कर झींकती के हाथ मे रख दी।

"ले, जरा गिन तो कितने हैं ?"

"आठ आने पूरे और सवा आना है।"

झींकती ने उत्साह में डूब कर वे पैसे गिन कर कहा और जैसे अपना बैंकिङ्ग का सम्पूर्ण ज्ञान उन पैसों पर बखेर दिया—"आठ आंने पूरे और सवा आना है।"

"है भागवान ! रोज मुश्किल से धेली हाथ लगती थी। आज उस के ऊपर भी हनुमानजी का पञ्जा है।"

भीतर का उत्साह जैसे सूरदास के कन्धों में गमक उठा, और उसने टटोल कर झींकती का मुँह चूम लिया।

बीसवीं सदी की कहानी-लेखिका को साहित्य के नभ में, कल्पना के सहारे, उड़ान भरने का अधिकार एक सीमा तक ही है, नहीं तो नवल-दम्पति के इस मधुर-मिलन पर

आकाश से फूल बरस पड़ते, दिशाएँ हँसने लगतीं और स्वर्ग के देवता, विमानों पर बैठे, प्रेम के इस महोत्सव को देखने दौड़े आते।

उन्नीसवीं सदी का अन्त होता तब भी, चारों ओर मे—सभी दिशाओं से—प्रेम की गुञ्जार सुनाई देती और हरेक वृक्ष एवं पल्लव उस की प्रतिध्वनि करता।

नये युग ने कहानी-लेखिका को जो कुछ अधिकार दे रक्खे हैं, उन का वह पूरा उपयोग भी करे तो यही कहेगी कि दो विभिन्न दिशाओं से आने वाली रेलवे-लाइनों की तरह, वे प्रेम के काँटे पर मिले और एक होगये थे। उन की जीवन-रेल अब उस समान पटरी पर निर्बाध गति से बढ़ी चली जारही थी और यह भी कि अब यह कहना कठिन था कि यह गाड़ी असल मे किस पटरी से आकर इस समान पटरी पर चढ़ी है।

२

सुबह को झींकती सूरदास का हाथ थामे, उसे चौराहे पर छोड़ जाती। पहले सूरदास की सारी चेतना मार्ग का सन्धान करने में व्यय होजाती थी—वह मोटर, यह साइकिल, वह ताँगा। बाईं ओर, दाईं ओर, और मोड़ की सतर्कता, पर अब ये सब जिम्मेदारियाँ झींकती ने

अपने ऊपर ले ली थीं और इन सब के स्थान में सूरदास के मन में आ बैठी थी भींकती।

वह भींकती का चिकना हाथ थामे, उसी के ध्यान मे डूबा चला जाता। अब उसे अपनी चाल हावड़ा एक्सप्रेस से भी तेज़ लगती।

चौराहे पर पहुँच कर, भींकती अपनी बगल से निकाल कर, दरी का एक टुकड़ा बिछाती और उसे फटे बोरी के एक टुकड़े से ढक देती। सूरदास उस आसन को छूकर हाथ माथे से लगाता, मङ्गलाचरण करता— 'देना बरकत गोपाल' और बैठ कर आसन को एक बार हाथ से टटोलता।

उस के गुदगुदेपन से उस का मन गुदगुदा उठता और उसे वह लुत्फ़ आता जो पहली बार दिल्ली के तख़्तताऊस पर बैठे नादिरशाह को भी न आया होगा। उस की सफ़ेद आँखे और काले ओंठ, दोनों मे एक साथ हँसी भर जाती और भीतर की मस्ती भीतर न समा कर, जैसे उस के स्वर मे बाहर मचमचा उठती—

"आँखें वालो ! इस अन्धे की तरफ भी देखते जाना !"

पास खड़ी भींकती यह सब देखती और भूल जाती कि वह कहाँ खड़ी है। चौराहा, मुसाफिर, खटपट, सब कुछ वह भूल जाती और सच तो यह है कि वह

सूरदास को भी भूल जाती। उस के भीतर भर जाता एक गूंगा आनन्द और उसे दिखाई देती सूरदास के चेहरे पर इठलाती मस्ती की लहरें और उन पर तैरता खुद उस का रूप !

"अच्छा, आज क्या बनाऊँ तुम्हारे लिये ?"

"जो तुम्हें रुचे, और तुम तो जो भी बना लेती हो उसी में रस आजाता है।"

"बात-बे-बात, बस तुम्हें तो मेरी तारीफ़ के पुल बाँधने हैं।"

और वह भोजन का प्रबन्ध करने बगीची की ओर लौट पड़ती। चौराहे के दूसरे किनारे जाकर वह एक बार पीछे की ओर देखती कि सूरदास बैठा गमक रहा है। इस के बाद भी दूर तक सूरदास की आवाज़ उस के कानों में आती रहती—

"आँखें वालो ! इस अन्धे की तरफ़ भी देखते जाना !"

झींकती का रोम-रोम अनबोलती बोली मे बोल उठता—"कैसी प्यारी आवाज़ है सूरदास की !" और उस की आँखों में घूम जाता सूरदास के उभरे पुट्ठों का शरीर। रस भरी कल्पना के झूले पर झूलती झींकती बगीची में आ पहुँचती।

दोपहर को झींकती रोटियाँ लेकर चौराहे पर पहुँचती और एक ही वाक्य में सूरदास का सारा थकान उतार देती—

"लो, खाना खा लो ! चिल्लाते-चिल्लाते गला भी टूट जाता होगा। दुनिया जानती है, ये भिखारी आराम की तोड़ते हैं। इन बाबुओं को एक दिन यहाँ बैठना पड़े तो पता चले कि भीख की रोटियाँ कितनी मीठी होती हैं ?"

"भोजन तो ऐसा बनाती है कि राजा भोज के महलों में भी न बनता होगा। पर यह यहाँ तक गरम कैसे रहता है ?"

झींकती ममता की गङ्गा मे डूब-डूब जाती।

"गरम-गरम कपड़े में लपेट कर, दौड़ी चली आती हूँ।"

सूरदास की अन्धी आँखों में खेल गई एक तस्वीर दौड़ी-दौड़ी आती झींकती की और जैसे उस के शरीर का खून भी ज़ोर से दौड़ चला।

झींकती अपने आँचल का पङ्खा झलती और सूरदास भोजन करता।

"शहरों मे तो हरेक आदमी लाट साहब बना फिरता है सूरदास ! पता नहीं, इन पर इतना धन कहाँ से टूट पड़ा है।

सूरदास ने अपने विगत जीवन के अनुभव की झाँकी लेते हुए कहा—"ये लाट साहब पूरे पशु है, जानवर ! भिखारी को ये पैसा नहीं देते, उपदेश पिलाते हैं कमबख्त ! जब पुराने ढङ्ग के सीधे और ग़रीब आदमी

इस दुनिया में न रहेंगे तो इन लाखों भिखारियों का क्या होगा, मैं यही सोचा करता हूँ भींकती ?"

"चलो, भगवान तब भी कुछ करेंगे ही। आखिर रिजक का ठेका तो रहीम ने ही ले रक्खा है !"

"और क्या ?"

"तुम कहो तो मैं कचहरी के चौहारे पर बैठने लगूं ? दो-चार आने मिलेंगे ही। खा-पीकर दस पैसे पीछे पड़ेंगे तो कल को काम आवेंगे। पता नहीं कैसा समय आने वाला है।"

मीठे-मीठे भिड़क कर सूरदास ने कहा—"पगली, कैसा-ही समय आए, मैं तो हूँ ! तुम्हे अपने जीते जी मैं चौराहे पर बैठने दूँगा मेरी रानी ?"

पता नहीं, भींकती इस सम्बोधन के बाद रानी हुई या नहीं, पर स्वयं सूरदास की छाती राजा के गौरव से भर उठी। बीसवीं सदी की पाबन्दियों का भय न होता तो कहानी-लेखिका उपमाओं और अलङ्कारों का ऐसा जाल बिछाती कि पाठक उर्दू मशायरों की तरह वाह-वाह से आकाश गुञ्जा देते !

"ले, हाथ इधर करना !"

भींकती ने अपना हाथ सूरदास के पास किया और उस ने चुपके से उस पर दो पैसे रख दिये।

"जा, अपने लिये दही-बूरा लेती जाना।"

पैसे वापस लेने का आग्रह करते हुए झींकती ने कहा—"मैं यों ही धेली रोज चाटा करूँगी तो यह घर कितने दिन चलेगा ? और फिर तुम कुछ खा लो तो ठीक भी है, सारे दिन गला फाड़ते हो। मुझे कहाँ हल में जुड़ना है ?"

दोनों पैसे उसी की मुट्ठी में दबाते हुए सूरदास ने कहा—"जा, जा, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ़ खा लेना। बावली ! जो खा-पहन लो, वही अपना है।"

झींकती आसमान में उड़ती-सी चली। उस का रोम-रोम जैसे रेडियो बन कर बोल रहा था—"हूँ ! जैसे मैं कोई बालक हूँ, दही को जी न चाहे तो मलाई का बरफ़ ले लेना !" और तृप्ति के रस मे डूबे उस के ओंठ खिल पड़े !

३

"तुम ही हो मेरे माई-बाप, एक पैसा भूखे पेट को दइयो !"

उस दिन 'रामलिला' के—मीठे गीत की तरह—लोच भरे स्वर से चौराहा भर गया और इस नये स्वर की लहरों मे सूरदास को लगा, जैसे उस का स्वर डूबने लगा है।

"यह भूतनी-सी कौन चिल्ला रही है झींकती ?"

"भूतनी क्यों, कम्बख्त परी है परी। भीख माँगने की आदत है, किसी कोठे पर जा बैठे तो लाख का ज़ेवर पहने !"

झींकती जब घर चली गई तो सूरदास के कानों में जैसे उस की आवाज़ बार-बार गूंजने लगी—'कम्बख्त परी है परी !'

वह सोचने लगा—रूप का पता तो आँख वालों को होगा, आवाज़ ज़रूर परी जैसी है। पर यह परी यहाँ कुछ दिन जम गई तो इस की आवाज़ के तूफ़ान में मेरा तो सारा रोज़गार ही डूब जाएगा। भगवान करें, इसे रात में प्लेग होजाए।

सूरदास के भीतर एक सिनेमा-सा खुल गया। एक परी-सी भिखारिन एक सुनसान कुटिया में अपने बिस्तरे पर पड़ी तड़फ़ रही है। प्लेग का वह शिकार है। बुख़ार १०७ तक, जैसे वह इस ज्वाला में जल जायेगी। कोई पानी की बूंद देने वाला नहीं और उसके भीतर प्यास की आँधी चल रही है। भिखारिन मर रही है। उस का परी-सा रूप मलीन होने लगा है। कभी-कभी वह आँखें खोल कर इधर-उधर देखती है, और ऐसा लगता है कि अब बस वह सदा के लिये आँखें बन्द कर लेगी !

सूरदास का जी धक्-से हो गया। यह प्लेग उसी के शाप का तो साकार रूप है। और वह जैसे उस

भिखारिन को बचाने के लिये अधीर हो उठा। नहीं, वह उसे मरने न देगा। उस के पास जीवन भर की जो भी जमा-जोखम है, वह सब फूंक देगा, डाक्टरों की भीड़ जोड़ेगा, महावीर स्वामी का कड़ाह करेगा, पर उस परी-सी भिखारिन को मरने न देगा।

"तुम ही हो मेरे माई-बाप, एक पैसा भूखे पेट को दइयो !"

परी-सी भिखारिन की आवाज़ सूरदास के कानों में पड़ी और झटका खा कर वह जैसे आसमानी दुनिया से ज़मीन पर आगया।

ओह, वह परी-सी भिखारिन तन्दुरुस्त है और उस के ही खेत में, उस की छाती पर मूङ्ग दलने को बैठी है। यहाँ यह जम गई तो इस की आवाज़ के तूफान में मेरा तो रोज़गार ही चौपट हो जाएगा !

सूरदास के मन मे आया कि उस का श्राप इसी घड़ी भयङ्कर रूप धारण कर ले और प्लेग का भूत इस सुन्दर साँप का गला घोट दे। पर दूसरे ही क्षण उसे सन्तोष हुआ कि उस के श्राप में दुर्वासा के श्राप की-सी शक्ति नहीं है, इस लिये चौराहे की शकुन्तला सुरक्षित है।

सूरदास अपनी लाठी लिये उठा और स्वर की सीध लिये उस परी-सी भिखारिन से जा लगा। भिखारिन ने देखा—सूरदास के रूप में, स्वर्ग की कोई विभूति, बिना

बुलाये, उस के सम्मुख आ खड़ी है। उस की हसरत भरी आँखों में वह जैसे रम गया। अपने फटे कम्बल का आसन उस ने सूरदास के नीचे बिछा दिया।

"तुम तो यहाँ बहुत दिन से बैठते हो सूरदास ?"

"हाँ, कई साल हो गये हैं। तुम कहाँ से आ रही हो ?"

"भिखारी का कहाँ क्या ? यों ही घूमती आ निकली, चार दिन में आगे हो जाऊँगी।"

चार दिन में उस के चले जाने की यह बात सूरदास को अच्छी नहीं लगी। उस ने दो आने अपनी फतुही में से निकाल कर भिखारिन के हाथ पर रख दिये।

"ले, शाम को चार कचौरी खा लेना। अभी नई है। पता नहीं कोई पैसा मिला होगा या नहीं। काम धीरे-धीरे ही जमता है।"

"सूरदास, यह तुम्हारे साथ बुढ़िया कौन है ?"

"कौन बुढ़िया ? मेरे साथ तो कोई बुढ़िया नहीं है।"

"वही जो खाना ले कर सुबह आई थी !"

"अच्छा, झींकती ? वह बुढ़िया है ? हाँ, वह मेरे साथ रहती है !"

"बुढ़िया नहीं तो क्या जवान है ? जैसी सूरत है, वैसा ही नाम है।"

४

सूरदास आकर अपनी जगह बैठ गया। सड़क खूब चल रही थी, पर आज पैसों की तरफ़ उस का ध्यान न था। उस के अन्तर-सागर में आज एक नया ज्वार आ गया था।

झींकती का जैसा नाम है, वैसी ही उस की सूरत है। वह बुढ़िया नहीं तो क्या जवान है? और यह भिखारिन? रूप में परी, कण्ठ में कोयल और उम्र में षोडशी! ऐसे लोच में पैसा माँगती है कि मुर्दे भी अण्टी टटोलते चले आएँ!

यही सब सोचते उसे शाम होगई और बगीची में पहुँच कर, झींकती ने उस से आज की कमाई माँगी, तो कोरा सूरदास सूनी आँखों से उस की तरफ़ देखता रह गया। दोनों के लिये यह नया अनुभव था।

"आज एक भी पैसा नहीं आया? पहले ही दिन उस राक्षसी ने चौपटा पढ़ दिया? हे भगवान! हमारा क्या होगा?"

सूरदास ने अब सही-सही समझा कि वह दिन भर क्या करता रहा? उस के गले मे आया कि कह दे—"उस बिचारी का क्या क़सूर, मैं खुद ही बुढ़िया और परी के झमेले में उलझा रहा।"

अचानक उस के मुँह से निकल गया—"सुबह-ही-सुबह दो आने आये थे, वे ही मैंने उस परी को दे दिये। उस बिचारी के पास कुछ भी न था!"

दिन भर उस के दिमाग़ मे परी का चक्कर रहा था। इस समय भी अनचाहे, वह परी कह गया। कह कर वह पछताया भी और झेंपा भी।

झींकती सिर्फ़ 'हूँ!' कह कर रह गई, पर उस के भीतर एक बवण्डर उठ खड़ा हुआ।

खाना खाते समय सूरदास ने झींकती से अचानक पूछा—

"तुम्हारी कितनी उम्र है रानी?"

झींकती ने देखा—यह 'रानी' सत्य के ढकने का स्वर्ण-पात्र है और सचाई यह है कि उस के जीवन-जहाज़ से परी का टारपीडो टकरा गया है। उस का रोम-रोम सिहर उठा। उस ने चाहा कि वह हँस कर यह ज़हर पी ले, पर पी न सकी। उस का मन विद्रोह कर उठा—

"मेरी उम्र कितनी भी हो, मैं परी नहीं हूँ!"

सूरदास ने यह बवण्डर देखा और अङ्गारे को राख से ढकने की चेष्टा करते हुए कहा—"मेरे लिये तो तुम परी ही हो!"

पर झींकती के निकट आँचल का यह आवरण प्रदीप को ढक न सका।

५

भीतर-ही-भीतर आग सुलगती रही। झींकती हार रही थी, परी जीत रही थी, सूरदास खुश था। अब झींकती की 'धेली' घट कर 'पावला' रह गई थी। वह इस का अर्थ जानती थी और सूरदास को खूब जली-कटी सुनाती थी, पर नदी अपने रास्ते बही चली जा रही थी।

पहले सूरदास झींकती को अपने पास से घण्टों न जाने देता था। अब भोजन लेते ही उसे आराम करने की सलाह देने लगता है। वह जानती है, आराम किसे चाहिए, पर वह करे क्या?

बिना मतलब अब उस पर रोज गालियाँ पड़ती हैं। 'लुटाता हूँ तो अपनी कमाई, तेरे क्या बाप का माल है?' यह सुनना अब उस के लिये एक साधारण बात हो गई है।

उस दिन झींकती का नारी-हृदय पूर्णतया विद्रोह कर उठा—"मेरे बाप का माल नहीं है, पर मैं रात-दिन हाड़ जो पेलती हूँ। और आज तुम्हें परियाँ लिपटने लगी हैं, वह दिन याद नहीं जब तुम ठोकरें खाया करते थे?"

सूरदास का पौरुष भी आज खुल कर खेल गया। उस ने अपने मजबूत हाथों से झींकती का वेणी-सहार करते हुए कहा—"कल से यहाँ हाड़ पेलने की जरूरत नहीं

है, किसी राजमहल में आरती उतरवाया करना। और मेरे ठोकर खाने की बात तो तुझे याद है, पर यह भी याद है कि तीन-तीन पैसों पर तब तू क्या खाती फिरा करती थी ?"

जो तार टूट कर भी महीनों से उलझ रहा था, वह आज पूरी तरह टूट गया। दूसरे दिन जब झींकती खाना ले कर चौराहे पर आई तो उस ने देखा, परी और सूरदास दोनों एक साथ खाना खा रहे हैं। कोई उस से नहीं बोला और न सूरदास ने उस का खाना लिया।

फिर भी नारी की बेबसी में लिपटी झींकती, जब शाम को सूरदास के पास जाने को हुई तो उस ने देखा कि सूरदास और परी दोनों चले आ रहे हैं। यह उस के निर्वासन का बेलिखा हुक्म था !

* * *

अब चौराहे पर सूरदास और परी दोनों एक साथ बैठते हैं और कभी सूरदास आवाज़ लगाता है तो कभी परी। इस जोड़ी की खूब चर्चा है और दोनों को खूब पैसे मिलते हैं।

झींकती भी इसी चौराहे पर, दूसरी ओर अब बैठने लगी है। पर वह किसी से कुछ माँगती नहीं। बिना माँगे, जो भी मिल जाता है, वही खा लेती है।

वह दिन-दिन सूखती जा रही है, पर उस का ध्यान मुसाफ़िरों की तरफ़ नहीं जाता। वह सूरदास और परी को देखती रहती है। यहाँ उसे पेट की भूख ले आती है या परी की डाह, इसे कौन बताये ?

मेरी चुटिया उस के हाथ में थी

१

तब मेरी शादी हुए कुछ ही दिन गुज़रे थे और मेरा जीवन लहङ्गे और घूंघट की चार दीवारी में सात समुद्रों की दुनिया समझा करता था। मेरा कमरा कोठी के ऊपर वाले हिस्से में था। मेरे पति आगरा कालेज में पढ़ते थे, इस लिये मेरा अधिकांश समय अपने कमरे मे किताबें पढ़ते ही बीतता था।

मेरी सास-ननद मुझ से खुश थीं और सभी नौकर मेरी बात हुक्म की तरह मानते थे। बस मुझे यहाँ के भङ्गी से चिढ़ थी। एक तो वह ठीक समय पर न आता था और जब बेवक्त आता, तो धम-धम कर के किवाड़ तोड़ता चला आता। मैं जब तक चटखनी खोलने उठती, वह दस-बीस बार किवाड़ खटखटा देता।

मैं बड़े घर की लड़की थी और बड़े घर की बहू। मेरी तबियत में नौकरों के लिये खास क़ायदे थे, इस लिये मुझे उस का ढङ्ग बहुत बेहूदा लगता, पर मैं उस से घूंघट निकालती थी—दम घोट कर रह जाती।

वह आता और इधर-उधर के रिमार्क कसता चला जाता। वह घर का पुराना भङ्गी था और बच्चे उसे ताऊ कहा करते थे। वह जानता था कि मैं उस से कुढ़ती हूँ, पर जैसे उसे इसकी परवाह न थी, वह पूरा ढीठ था।

२

उस दिन कोई बारह बजे होंगे। मैं आराम कुर्सी पर लेटी 'मेरी कुरेली' का एक उपन्यास पढ़ रही थी। बाबू जी की चिट्ठी कई दिन से न आई थी। मैं आज खास तौर पर डाक की प्रतीक्षा में थी।

अचानक धम-धम की आवाज़ से कोठी का ऊपर वाला हिस्सा गूञ्ज उठा। मेरी आँखों मे ढीठ बूढ़े भङ्गी की सूरत घूम गई। किताब हाथ से रख कर मैं उठी। रेशमी दुपट्टा सँभाल कर मैंने घूघट निकाला, पर तब तक किवाड़ न जाने कितनी बार धमक उठे।

भीतर-ही-भीतर कुड़मुड़ाती मैं दरवाज़े तक पहुँची और धीरे से चटखनी खोल कर लौट पड़ी। पीछे से

एक झटका लगा। मेरी चुटिया उस के हाथ में थी और मैं बरबस पीछे की ओर खिंच रही थी।

यह हिम्मत ! मेरे सारे शरीर में आग लग गई, और पूरे ज़ोर से मैंने अपनी कुहनी उसे लक्ष्य कर पीछे की ओर मारी। इसी छीना-झपटी में मेरा घूंघट खुल गया और मेरी नज़र पीछे की ओर जा फिरी।

उफ़ ! बूढ़े भङ्गी का कहीं पता न था। मेरी चुटिया बाबू जी के हाथ में थी और वे मुस्करा रहे थे। न जाने कब मैं उन की ओर खिंच गई।

"तुम बड़े खराब हो। किवाड़ पीटते रहे और ज़बान न हिली। कब आये तुम ?"

ज़बान हिला देता तो गामा पहलवान के दर्शन कैसे होते ?"

"तुम गामा के दर्शन कर रहे थे और मैं बूढ़े भङ्गी को पीटने की तैयारी। चलो खैर हो गई !"

पता नहीं वे क्या समझे, पर ज़ोर से हँस पड़े।

अञ्जनहारी

१

गेलीलियो ने अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा से दूरबीन का आविष्कार किया, जिस से हमें दूर की चीज भी पास-सी दिखाई देती है। मैं सोचती हूँ, गेलीलियो को इस यन्त्र के आविष्कार में बरसों लगे होंगे और न जाने कितनी रातें उस ने इस चिन्ता में जाग कर बिताई होंगी। आखिर उसे यह बेचैनी क्यों थी कि दूरबीन बने ?

ऊपर से तो यह सवाल एक मजाक है, पर वाक़ई हरेक आविष्कार के पीछे उस की आवश्यकता तो सिद्ध होनी है। तो दुनिया चाहती थी कि दूर की चीजें भी दिखाई दे। उसे इस के लिये आकुलता थी और इस आकुलता ने वैज्ञानिक के मन को अपील की, वह जुटा और एक चीज आई।

मन प्रश्नों की खान है। वहाँ नये-नये प्रश्न उमड़ते हैं। तो मनुष्य में दूर की चीज़ देखने की यह आकुलता क्यों उपजी ? उस के आस-पास जो कुछ है, उसे तो वह अभी नहीं देख पाया। हमारे चारों ओर, सुख-दुख की धूप-छाँह मे, जो रात-दिन सृष्टि-विनाश का अभिनय हो रहा है, उस की ओर से आँखें बन्द कर के हम चन्द्रलोक की सैर को क्यों आकुल हैं ?

मेरे अपने-ही घर में इस मास जो कुछ हो गया, उस पर यों ही मेरी निगाह चली गई। नहीं तो कहाँ इस तरह का लेखा-जोखा कोई तैयार करता है ?

एक अञ्जनहारी ! सृष्टि के अनन्त प्राणियों में यह भी एक उड़ना जीव है। वह रात-दिन हमारे पास उड़ती है। हमारे बालक तक उसे जानते हैं, पर हम नहीं जानते कि उस के नामकरण का इतिहास क्या है ? बस वह अञ्जनहारी है, पीली बर्र का लाल-घुसरैला ज़रा बड़ा-सा संस्करण। बर्र काटती है, वह आम तौर पर नहीं काटती। हमारे घरों में अपने मिट्टी के घर बनाती है। जन्म-जन्म से बूढ़ी माएँ और नानियाँ बच्चों को पढ़ाती आई हैं कि जो इस घर को तोड़ेगा उस की आँख में अञ्जनहारी निकलेगी।

अञ्जनहारी ! बेचैन करने वाली आँख की एक फुन्सी। एक जीता जागता जीव और एक फुन्सी; दोनों का यह

एक नामकरण कैसे हुआ, कब और किस आचार्य के द्वारा हुआ, इसे शायद कोई नहीं जानता !

मैं अपने पलङ्ग पर पड़ी फ्रेञ्च ग्राम्य-गीतों का एक संग्रह पढ़ रही थी कि एक अञ्जनहारी झरोखा लाङ्घ कर कमरे में आगई—भर्र घू घू भर्र ! यों ही मेरा ध्यान उधर चला गया। ज़मीन मे गड़े धन को जैसे भेदिया चोर टटोलता है, वैसे ही वह कमरे का कोना-कोना देख चली। कोई आध घण्टे में उसकी यह 'सर्वे' समाप्त हुई और एक स्थान उसे पसन्द आ गया। यह झरोखे के ठीक नीचे था। पसन्द इस माने में कि इस पर वह काफ़ी देर तक खोज-पड़ताल करती रही और उड़ गई।

मुझे अपने पर झुझलाहट आई कि मैंने यों ही इतनी देर उसे देखने में ख़राब की, पर दूसरे दिन भोजन करके जब मैं फिर लेटी, तो देखा कि ठीक उसी जगह मिट्टी का एक गोलघर तैयार हो रहा है। मस्जिद के गुम्बद-सा एक गोलघर और बीच में छेदनुमा दरवाज़ा !

२

जीवन में अनेक कोठियाँ बनते देखने का अवसर मिला है और दूसरे भवन भी ! बचपन में पिता के घर

और जवानी में पति के यहाँ, अब भी कहीं-न-कहीं 'टाँकी' लगी ही रहती है फिर इस छोटी-सी अञ्जनहारी के इस गृह-निर्माण में ऐसा क्या आकर्षण था कि फ्रेंच ग्राम्य-गीतों के उस मद भरे रस-प्रवाह को छोड़ कर मन उस में जा उलझा ?

मकान छोटा हो या बड़ा उस के निर्माण में कितने आदमी भाग लेते है ?

"माँ ! मेरा वह रेशमी गाउन ला दे, मैं अपने निष्ठुर प्रेमी से मिलने जाऊँगी।"

बीमार बेटी ने माँ से कहा, तो वह बोली—

"बेटी ! तू सप्ताह भर से खाट पर पड़ी है। डाक्टर ने उठने को भी मना कर दिया है और तू उतनी दूर जायेगी ?"

माँ की चिन्ता बेटी ने देखी और उसे निश्चिन्त करते हुए कहा—

"माँ, तू मेरी चिन्ता न कर। इन डाक्टरों की दवा से मैं अच्छी न हूँगी। अपने प्रेमी से बिना मिले, मुझे चैन न पड़ेगी। तू मुझे जाने दे माँ, ला मेरा रेशमी गाउन और चमकीली धारी का हैट !"

प्रेमी कितना निष्ठुर है कि बीमारी में भी मिलने नहीं आया, पर उस बेचारी को इस का ध्यान नहीं है। वह उस से मिलने को आतुर है। कितना रस-मय है यह फ्रेञ्च

ग्राम्य-गीत। और मैं फिर सोचने लगी—मकान छोटा हो या बड़ा उस के निर्माण में कितने आदमी भाग लेते हैं? कोई नक़्शा बनाता है, कोई सामान जुटाता है और कोई उस सामान का उपभोग करता है। पर यह अन्ननहारी इकली ही सब का भार सँभाले जीवन में चल रही है!

मनुष्य समझता है वह बुद्धि का भण्डार है, पर इस छोटे-से प्राणी में कितनी चेतना है। कैसे सोचती है यह सब बातें? क्या इस के मन में भी मानव के संस्कार हैं? किसी दिन धूप और वर्षा में झकझोर हो, इस ने चाहा कि एक मेरा भी घर हो, और फिर उस घर बनाने के साधनों पर विचार किया, उन्हें जुटाया और आप जुटी।

मैं सोच रही थी, वह काम कर रही थी। इतने में वह जाने कितनी बार आई, गई। वह जाती, कहीं से ज़रा-सा गारा अपने मुँह में लिये आती, घर पर बैठती और चारों ओर देखती कि कहाँ नीचा है, वहीं उसे लगाती और फिर देखती कि ठीक लग गया है या नहीं?

अब घर तैयार हो गया। वह उस के मुँह पर आ कर बैठी, धीरे से अपना डङ्क उस ने उस के भीतर डाला और अत्यन्त सावधानी से उसे चारों ओर भीतर घुमा कर देखा कि कहीं ऊँच-नीच तो नहीं है। उस की सतता इतनी सूक्ष्म थी कि जैसे गुप्तचर शत्रु के 'वार-रेकर्ड-ऑफिस' मे घुस कर टोह ले रहा हो!

मैं उस की सतर्कता पर विचार कर ही रही थी कि वह एक लम्बा-सा हरा कीड़ा मुँह और पैरों में दबाये चली आ रही है। धीरे-धीरे उसे उस ने अपने मकान में पहुँचा दिया, इतनी सफ़ाई से कि दरवाज़े के छोटे से छेद की दीवारें कहीं भी उसे छू न गईं।

मैं हँस पड़ी—अच्छा, यह आप का टोस्ट है?

थोड़ी ही देर मे वह फिर गारे की एक फुटकी लिये आई और उस छेद पर बैठ गई। अब यह क्या कर रही है? मैं जान न सकी और ज्यों ही वह उड़ी कि मैं उठी। देखा वह दरवाज़ा बन्द कर रही है।

अरे, वह कीड़ा न था, इस का अण्डा था! पर वह बच्चा कब बन जायेगा? और जब बन जायेगा, तो यह दरवाज़ा फोड़ कर उसे उड़ा ले जायेगी, पर तब तक यह खुद कहाँ रहेगी? इसे कैसे पता है कि इतने दिन में बच्चा बनता है? मालूम भी है, तो उतने दिन यह किस पञ्चाँग से गिनेगी? हमारे कमरे से तो एक दिन के लिये भी कैलेण्डर गुम हो जाये तो सौ बार तारीख पूछनी पड़े। दीवार का कैलेण्डर अलग है, टेबिल का अलग, पर यह स्मृति के सहारे ही उतने दिन पार कर लेगी? इस के पास समय की बहती धार को नापने का पैमाना क्या है? मनुष्य जिन जीवों को अपने सामने कुछ भी नहीं समझता, कितनी ही बातों मे वे उस से कितने आगे है?

यही सोचते २ मैं सो गई, पर स्वप्न में भी मुझे दीखा कि अञ्जनहारी अपना अण्डा पैरों में दबाये उड़ी आ रही है।

३

"अरे, अब क्या कर रही है तू ?"

दूसरे दिन भोजन कर के जब फिर मैं पलङ्ग पर आई, तो देखा अञ्जनहारी एक नया घर, पहले घर से मिला कर बना रही है। मुँह से अचानक निकल पड़ा "अरे, अब क्या कर रही है तू ?" पर उसे किसी की बात सुनने का अवकाश न था, वह अपने काम मे जुटी रही।

दो दिन मे वह घर भी बन कर तैयार हो गया और तीसरे दिन उस मे भी उस ने वैसा ही अण्डा रख कर, उस का मुँह बन्द कर दिया। कहाँ से लाती है यह अण्डे ? मैंने कोठी की छत पर चढ़ कर देखा, वह किधर जाती है, पर कुछ पता न चला। हाँ, यह पता चल गया कि गारा वह मेरे बाग़ के गड्ढे से लाती है। वहाँ जाकर मैंने देखा, गड्ढे का गारा सूखा-सा है, पर अञ्जनहारी छाँट कर, भीतर से मुलायम लाती है। कितनी चतुर है यह अञ्जनहारी ?

लगभग पन्द्रह दिन में अथक परिश्रम कर के उस ने ६ घर बनाये और उन में ६ अण्डे बन्द किये। मैं उस के

बारे में अब इतनी उत्सुक थी कि सब कुछ जानना चाहती थी, पर बेचैन थी कि जान न सकी।

अब उस ने सातवाँ घर बनाया और मैंने देखा कि वह उस पर 'फिनिशिङ्ग-टच' कर रही है, तो क्या और अण्डा लावेगी ? कितने अण्डे देती है यह अञ्जनहारी ? यह ख़ुद कहाँ रहती है ? इस ने यह अण्डे कहीं दे रक्खे हैं या दे रही है ? पर अण्डे देने का कोई समय नियत है या जब मकान तैयार हो जाता है और यह चाहती है, तभी अण्डा दे देती है। हे भगवान ! जीव और माया के इन्द्रजाल से भी बढ़ कर है यह अञ्जनहारी का इन्द्रजाल !

"आज चाय-वाय मिलेगी या अञ्जनहारी फ़िल्म ही चलता रहेगा ?" मैंने चौंक कर देखा लाला जी खड़े मुस्करा रहे हैं। आश्चर्य से मैंने देखा, चार बज गए। लाला जी का स्वभाव ऐसा है कि मेरी ख़ुशी में अपनी ख़ुशी समझते हैं। वे तीन बजे चाय पीते हैं, पर उन्हे पता है कि आज-कल मैं अञ्जनहारी में उलझी हूँ, चार बजे तक भी चाय ऑफ़िस में न पहुँची तो उठ कर आये, पर नाराज़ होना तो जैसे उन्हे आता ही नहीं। मुझे अपनी लापरवाही पर खेद हुआ और जल्दी से मैं उठी, पर वाक़ई मेरे रोम-रोम में आज अञ्जनहारी रमी थी, उसी में डूबे हुए मैंने कहा—

"लाला जी ! यह अञ्जनहारी तो एक पूरी पुस्तक है और पुस्तक क्या एक पूरी दुनिया है।" हंस कर बोले—"पुस्तक, दुनिया और ब्रह्माण्ड तो मुझे पता नहीं, पर हमारी कहानी-लेखिका जी के लिये एक मजेदार प्लॉट जरूर मालूम होता है।"

चाय पीकर मैं फिर पलङ्ग पर आ गई। गरमी लग रही थी, मैंने पंखा खोल दिया और लेट गई। पंखे की घूं-घू में एक और घू-घूं आ मिली। मैंने दम साध कर देखा, अञ्जनहारी वही हरा अण्डा पैरों मे उलझाये चली आ रही है, पर कमरे मे आते ही आज उसे उस वातावरण का सामना पड़ा, जैसे जहाज को टारपीडो की टक्कर का या नाव को भौंर का करना पड़ता है।

अञ्जनहारी ओवरलोडेड और बिजली के तेज पंखे की हवा से भरा कमरा। उसे ऊपर से नीचे आना था, पर नीचे से हवा का झोंका उसे ऊपर फेकता था। अञ्जनहारी के पंखों पर उस के अण्डे का बोझ तुल रहा था और अण्डे देने की कमजोरी का असर भी सम्भवतः उस पर होगा ही, आखिर वह जच्चा थी।

जी मे आया, पङ्खा बन्द कर दूँ और वह आसानी से अपने घर में उतर आये, पर जवानी कौतुक के प्रति सदा उत्सुक रही है। देखू तो इस वातावरण को, अच्छे तैराक की तरह धार को चीर कर यह कैसे उतरती है।

अञ्जनहारी हवा से ऊपर चारों ओर उड़ रही थी। अपने को पूरी तरह साध कर धीरे से वह हवा के उस चक्कर में उतरी। हवा ने उसे घुमा दिया, पर अपने पंखों पर खेल कर वह अपने को सँभाले रही।

शाबाश! मेरे मुँह से निकल गया और अब वह झूमती-सी, सँभलती-सी, मचलती-सी पंखे की बराबरी में आ गई—ठीक पंखे की बराबरी में। पंखे ने एक बार घुर-घुर की और अञ्जनहारी ने घूं-घूं, जैसे जर्मनी और इङ्गलैण्ड के दो बौम्बर टक्कर लेने की तैयारी कर रहे हों।

पंखे ने अपने जौहर दिखाये और हवा का एक झोंका पूरे जोर से उसे दिया। अञ्जनहारी सँभली, उस ने अपने पंख तौले, पर सँभल न सकी, घूम गई। अब उस ने पंखे के साथ और शायद उसी की रफ़ार मे एक चक्कर लिया।

"वाह, उड़नखटोलने का मजा आ रहा है आपको" मैंने कहा, पर तुरन्त मुझे लगा कि इस तेजी में अञ्जनहारी अपनी होश खो रही है। अब वह अपने पंखों की रफ़ार से जाने कितनी तेज थी। बैलगाड़ी रेल के पीछे कोई बाँध दे तो क्या होगा?

मैं उठी कि पंखा बन्द कर दूँ और वह नीचे उतरे कि खट! चौंक कर मैंने ऊपर देखा, पर अञ्जनहारी दिखाई न दी। पंखा बन्द हो गया, पर अञ्जनहारी कहाँ है? आँखें

नीचे झुकीं। उफ़, हरा अण्डा और अञ्जनहारी कटे पड़े थे। उस के दो टुकड़ों को जोड़ कर मैंने अपने हाथ पर रख लिया, पर यह शव के प्रति मेरे प्यार का प्रदर्शन था।

जीवन में अनेक बार मुझे जच्चा और बच्चा को एक साथ मरे देखने का अवसर मिला था, पर मेरे मन में वेदना की इतनी फुहारें कभी न पड़ी थीं, क्यों? यह मैं नहीं जानती।

४

"हाँ, तो लाहौर से आज कितनी स्यापे वाली बुला दूँ?"

लाला जी ने मज़ाक करते हुए शाम को पूछा। उन्हें शायद प्रबोध ने कह दिया था कि मैं आज अञ्जनहारी को हाथ पर रक्खे रोती रही।

अपने भारी दिल को सँभालते हुए मैंने कहा—"कैसी बात कर रहे हो? मेरे भरे पूरे घर में कम्बख्त स्यापे वाली क्यों आवें?"

"आखिर आप की अञ्जनहारी जब मर गई है तो उस की आत्म-शान्ति के लिये लाहौरी स्यापे का समवेदना-सन्देश क्यों न ब्राडकास्ट हो?"

सब हँस पड़े और मेरी मुस्कान भी बिखर पड़ी।

"लाला जी ! कितनी बड़ी दुर्घटना हुई यह कि बिचारी ने एक दुनिया बसाई और वह उस का तमाशा देखने से पहिले ही चल बसी। मरते-मरते भी उसे अपने बच्चों का ध्यान रहा होगा।"

"मेरी राय यह है कि मैं आज एक प्रेस कान्फ्रेंस बुला दूँ और आप उस में इस दुर्घटना पर एक वक्तव्य दे दें।"

लाला जी सहृदय आदमी हैं, पर वे मेरी भावुकता से परिचित हैं। वे चाहते थे कि मैं हँस पड़ू और मेरा दुःख-भार हल्का हो।

दूसरे दिन जब भोजन कर के मैं अपने पलङ्ग पर लेटी तो कमरे का वातावरण मुझे सूना सूना लगा; जैसे देखने को वहाँ अब कुछ न था। कमरा गरम हो रहा था, पर स्विच दबाने को मेरा जी न चाहा, उस से मेरा मन जला हुआ था।

पंखे से हट कर मेरा ध्यान अञ्जनहारी के घर की ओर चला गया। छः घर ज्यों के त्यों बन्द थे और सातवें घर का मुँह खुला था। मुझे ऐसा लगा कि कोई दुष्ट डाकू किसी यात्री की जीभ काट डाले, वह दूसरे यात्रियों को सहायता के लिये पुकारना चाह कर भी पुकार न सके और वेदना से कराह कर सिर्फ़ मुँह खोले खड़ा रह जाय।

गोल गुम्बद्-सा घर और चीनी कटोरे की तली सा रवेदार उस का द्वार, दोनों शून्य भाव से जैसे आतुर हो अञ्जनहारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह प्रतीक्षा इतनी आतुर क्रन्दन से परिपूर्ण थी कि मैं छोटा-सा शरीर धारण कर सकती तो निश्चय ही मक्खी बन कर उस घर में बैठ जाती। मैं पलङ्ग से उठ कर घर के पास आ खड़ी हुई।

छः घर बन्द थे और एक खुला, खुले घरसे मेरा ध्यान हट कर उन बन्द घरों की ओर चला गया। इन में हरे-हरे कोमल छ. अण्डे हैं। तुरन्त मन में एक प्रश्न उठ चला—ये अण्डे कब बच्चे बनेंगे ? पुरवैया बवण्डर मे बिजली कौंद गई और मुझे रोमाञ्च हो आया—वे बच्चे इस बन्दी-गृह से निकलेंगे कैसे ? अञ्जनहारी होती तो वह धीरे से समय पर 'मुँह का परत' उतार देती और अपनों को सहारा और चुग्गा दे कर उड़ा ले जाती, पर अब तो दरवाजा बन्द है। तो क्या ये यों ही घुट कर मर जायेंगे ? एक दम छः नन्हें-नन्हें प्राण !

मुझे अपने जीवन की एक और दुर्घटना याद हो आई। क्वेटा में जब वह भूकम्प आया, मैं वहीं थी। मै अपने कमरे में पड़ी सो रही थी और मेरी बहिन की छोटी लड़की रमा भी मेरे पास थी। अचानक दुनिया हिली और तमाम कमरा सिमट कर मुझ पर आ गिरा। घड़बड़ाहट में दिमाग़ की चेतना-शक्ति जैसे सो गई। घण्टों बाद में

समझ सकी कि क्या हुआ यह ? मैंने हाथ पैर फैलाये, छत का गाटर एक दीवार पर तिरछा टिका था और उस के नीचे वह ज़रा-सी जगह बची थी, जहाँ मैं हूँ। मेरे पास ही पड़ी रमा सिसक रही थी। दिखाई तो कुछ देता ही न था। अन्दाज़ से उठा कर मैंने उसे छाती से लगा लिया। उस ने पानी माँगा अब मैंने ठीक-ठीक अपनी स्थिति समझी और बाहर से भीतर तक मैं सन्न हो गई। मौत मुँह बाए सामने खड़ी थी—कोई रास्ता न था। मुन्नी पानी माँग रही थी और मेरी आँखों से पानी बरस रहा था। न जाने कब तक वह तड़पी और फिर धीरे-धीरे शिथिल होने लगी। उसका शरीर ठण्डा होने लगा। मैं गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाई, पर आवाज वहीं गूंज कर रह गई।

तीसरे दिन मुझे कुछ लोगों ने मलबा हटा कर निकाला, पर मुन्नी के जीवन की ज्योति उस अन्धकार में लीन हो चुकी थी। रमा की वह तड़पन, चिल्लाहट और बाद का मुरझाया हुआ चेहरा मेरी आँखों में घूम गया। मेरा रोम-रोम सिहरन से भर गया। क्या यह छहों नन्हें भी रमा की तरह घुट कर मर जायेंगे ?

तो मैं क्या करूँ ? मेरे हाथ कुछ करने को बेचैन हो उठे और मैं अपना नेहरना उठा लाई। मैंने चाहा कि घर के मुँह पर जो हल्की-सी परत है, वह धीरे से उतार दूँ और टार्च से भीतर झाँकूं कि इतने में मेरी नौकरानी आगई।

"क्या कर रही हो बहूजी !"

"हीरा ! इन में बच्चे बन्द हैं और इनकी माँ मर गई। मैं उस का मुँह फोड़ कर उनके निकलने की जगह कर दूँ ?"

"ना बहूजी, आप को क्या पता कि अण्डा कब पकेगा ? कच्चे अण्डे में ज़रा भी हवा लग गई, तो बस फिर उस में जी ही न पड़ेगा !"

मैंने नेहरना रख दिया, पर यह कैसे पता चले कि अण्डा कब पकेगा ? अपने बाग़ के माली से मैंने पूछा पर वह भी न जानता था। एक शहद बेचने वाला आगया। उस से भी पूछा और वह भी गुम। मैंने अपना ड्राइवर भेज कर एक अण्डा बेचने वाले को बुलाया और उस से भी इस बारे में पूछा। बहुत देर में तो वह मेरी बात ही समझा। तब कुछ सोच कर बोला—"मरेंगे तो मर जाने दो, आप को इतनी परेशानी क्यों है बहूजी ?" जिस ने जीवन में हज़ारों अण्डों का खुद नाश्ता कर लिया और लाखों बेच डाले, उसे मैं अपनी बेचैनी का अर्थ कैसे समझाती ?

५

"माली ! चार-पाँच अञ्जनहारियाँ पकड़ कर ला। उन के पंख मत तोड़ना। मैं तुझे इनाम दूँगी !"

न जाने वह कैसे तीन अञ्जनहारी पकड़ लाया। मैंने कमरे के तमाम झरोखे बन्द करके, बिजली जलाई और उन्हें कमरे में छोड़ दिया। अपने पलङ्ग पर, साँस रोके, चुपचाप, बिना हिले-डुले, मैं उन्हें देखती रही। न जाने कितने चक्कर उन्होंने काटे, पर वह घर जैसे उन्हें दिखाई ही नहीं देता था। उन्हें असल में अपने बाहर निकलने की धुन थी।

मैं कैसे अपनी बात इन्हें समझाऊँ? वही युग अच्छा था, जब पशु-पक्षी भी मनुष्य की बात समझ लिया करते थे। काश! एक पल के लिये वह युग लौट आए और इन अञ्जनहारियों से मैं अपनी बात कह पाऊँ? मैंने अपने माली को फिर बुलाया। उस ने एक अञ्जनहारी पकड़ कर उन बन्द घरों पर टिकादी, पर यह तो एक बाग़ी को डरा कर राजभक्त बनाना था। मैंने दुःखी होकर झरोखे खोल दिये, और वे उड़ गईं।

अब मैं क्या करूँ?

दूसरे दिन मैंने अपने माली को बुला कर कहा कि दो-तीन दिन में वह मुझे बताये कि इस तरह के घर कहाँ-कहाँ लगे हैं? तीसरे दिन उसने मुझे आठ घरोंकी सूचना दी। मैं उन में से तीन खुद जा कर देख आई और मैंने माली से कहा कि वह देखता रहे कि इन पर कब-कब अञ्जनहारी आती है और क्या करती है? वह मुझे शायद

झकी समझ रहा था, पर मेरा नौकर था। रोज बेचारा सब घरों पर चक्कर काट आता।

"बहूजी, किसी घर पर भी अञ्जनहारी नहीं आती!"

तीन दिन के बाद यह उस की रिपोर्ट थी।

"तुम देखते रहो! कभी तो उन अण्डों के बच्चे बनेंगे और उन की माएँ आएँगी!" यह मेरे इरादों की घोषणा थी। पर माली की एक बात ने मेरे हौसले ठण्डे कर दिये।

"सब घर एक साथ ही थोड़ा बने हैं कि सब के बच्चे एक साथ निकलेंगे! जब उन घरों के बच्चे पूरे हों तो क्या पता, तब तक इन घरों के बच्चे घुट कर मर भी जाएँ!"

फिर ये छः प्राण कैसे बचें? मुझे कौन बताये कि वे बिचारे भीतर पल रहे है या मर गये! बीसवीं सदी का मनुष्य बड़ा ज्ञानी है। जल, थल, नभ में उस का झण्डा लहरा रहा है, सभी यह कहते है। पर क्या खाक ज्ञानी है, जब उसे अञ्जनहारी के बारे मे ही कुछ ज्ञान नहीं है!

मुमकिन है, इस पर किसी पुस्तक में कुछ सूचना हो। मैंने बड़े-बड़े प्रकाशकों के सूचीपत्र मँगा देखे। जीव-जन्तुओं पर १०-१२ पुस्तकों के नाम थे। मैंने सब को वी० पी० से भेजने के लिये लिख दिया है, पर लाला जी कह रहे थे कहीं कुछ न मिलेगा, तुम यों ही परेशान हो रही हो। फिर भी पुस्तके तो पढ़ूंगी ही।

घर में जो आता है उसी से पूछती हूँ, पर कोई कुछ नहीं जानता। कभी-कभी लाला जी झल्ला पड़ते हैं—"हर समय वही पागलपन!" पर मैं क्या करूँ? मेरे दिमाग़ में तो रात-दिन ये बच्चे उलझे रहते हैं और आँखों में घूमता रहता है रमा का वह मुरझाया हुआ चेहरा। शायद किसी पुस्तक में कुछ मिल जाये, पर पुस्तकें जाने कब आएँगी? तब तक उन बिचारों का क्या होगा? कौन जाने, वे पल रहे हैं या मर गये?

वह भीख माँगती आई !

९

"मैं कहाँ रहूँ, मैं कहाँ बसूँ ,
न ये मुझ से खुश, न वो मुझ से खुश !
न किसी की आँख का नूर हूँ ,
न किसी के दिल का क़रार हूँ ॥"

जीना झूमता, गाता चला आ रहा था। वह वायलिन का मास्टर है और रोज़ नई चीज़ें सुनाता है। पता नहीं उसे ऐसी-ऐसी चीज़े मिल कहाँ से जाती हैं।

"ओह ! मेरी ललिता भी यह ग़ज़ल अक्सर वायलिन पर गाया करती थी। कम्बख्त के गले में कुछ ऐसा दर्द था कि सुन कर दिल भर आता। उस की भी आँखें बरस पड़तीं। पता नहीं अब कहाँ होगी ?"

"कौन है वह ललिता, भाभी जी! उस का वायलिन हमें भी सुनवादो। मुमकिन है वह हमारे वायलिन पर रीझ कर हम से निकाह पढ़ने को तैयार होजाए!"

"उँह! मुँह धोलो पहले, निकाह क्या करोगे? उस के चप्पलों पर पालिश करने का ही अधिकार मिल जाए तो लाहौर के रईसज़ादों से तुम्हारी क़िस्मत अच्छी समझी जाए!"

"हूँ! ऐसी हैं ललिता देवी?"

"हैं का तो पता नहीं, पर थीं ऐसी ही। बेचारी को रोटियों का भी सहारा न था, जब वह मेरे पास आई।"

"अच्छा, उसे रोटियों का सहारा भी न था और उस के पीछे पागल फिरते थे, लाहौर के रईसज़ादे?"

जीना एक चञ्चल युवक है, कहानियों का शौक़ीन। ललिता का इतिहास सुनने को मचल पड़ा।

*   *   *

पिता जी को मरे तब कुछ ही दिन हुए थे और स्टेट का सारा काम भाई महावीर के हाथों में था। मैं भी उस के आग्रह पर कुछ दिन के लिये लाहौर आई हुई थी। भाई को खाने-पीने का बहुत शौक था, इस लिये मिसरानी के साथ मुझे भी रोज़ चूल्हे पर सिकना पड़ता था।

उस दिन कोई १२ बजे होंगे। मैं चूल्हे से उठ कर अभी आई थी और पसीने-पसीने हो रही थी कि एक भिखारिन युवती आकर बरामदे में खड़ी हो गई।

"बीबी जी ! मुझे बहुत भूख लगी है। दो दिन से मैंने कुछ नहीं खाया। आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि आप मुझे भोजन करादें।"

उस की भाषा और कहने का ढङ्ग देख कर मैं चौंक पड़ी, पर गरमी से दिमाग़ झल्लाया हुआ था। रुखाई के साथ मैंने कहा—

"अरे, पढ़ी-लिखी मालूम होती है तू तो ! भीख माँगती फिरती है, कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेती ?"

"बिगड़े समय का कौन साथी है बहिन ? कभी हमारे ही यहाँ नौकर रहा करते थे, आज कोई बात नहीं पूछता। तुम्हीं रख लो बहिन !

कोई वेतन नहीं माँगती, बढ़िया कपड़े नहीं माँगती, सिर्फ़ दो रोटियाँ चाहती हूँ। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ बहिन ! मुझे अपने पास रख लो, तुम्हारी बड़ी सेवा करूँगी !"

मैंने भीतर से माँ को बुलाया।

"माँ, तुम इस छोकरी को रख लो। यह बेहद ग़रीब है, अच्छे दिन देख चुकी है, होशियार है, मैं चार दिन में चली जाऊँगी, तुम्हें इस की मदद मिलेगी और इस के भी दिन कट जायेंगे !"

जब वह बाथरूम में नहा कर, मेरी साड़ी पहने बरामदे में आई, तो मुझे वह एक राजकुमारी-सी लगी, पर उस की आँखों में इतना शील और चेहरे पर बेकस ग़रीबी थी कि मेरा दिल भर आया।

दोपहर में उस ने माँ के पैर दबाये और शाम को खाना बनाया। खाना इतना उम्दा कि सब ने तारीफ़ की और चूल्हे पर वह इस तरह तिरछी बैठी कि कोई उस का मुँह न देख सके।

भारत का बुढ़ापा शील-सदाचार का समर्थक है। माँ को उस का यह ढङ्ग बहुत पसन्द आया और पहले ही दिन वह माँ के लिये अपनी बेटी हो गई।

दूसरे दिन सुबह जब हम उठे तो ललिता दो कमरे ठीक कर चुकी थी। इधर की मेज उधर, उधर की इधर, वह तस्वीर यहाँ, वह वहाँ। कमरे नये-से चमक रहे थे।

रसोई मे आज उस ने नई-नई चीजें बनाई। दोपहर में फिर उस ने अम्माँ की सेवा की और शाम को वह जब नन्हीं को अँग्रेजी पढ़ाने बैठ गई तो हम सभी को आश्चर्य हुआ।

इस तरह ललिता तीन ही दिन में, माँ के लिये रसोइया, प्राइवेट सेक्रेटरी, अध्यापिका और न जाने क्या-क्या बन गई।

चौरानवे

२

उस दिन जब माँ ने कहा—"ललिता बेटी ! अब मैंने तेरे सारे गुण देख लिये। अब तू अपना वेतन तै करले" तो ललिता माँ के पैरों से लिपट कर रो पड़ी।

"माँ ! मैं भीख माँगती यहाँ आई थी और अब रानियों की तरह रह रही हूँ। माँ, अगर तुम मुझ से इस तरह की बातें करोगी तो मैं अपनी झोली उठा कर चल दूँगी।"

माँ का दिल लोट-पोट हो गया और उस ने ललिता को छाती से लगा लिया।

"बहिन जी ! तुम्हारे हाथ-पैर दबा दूँ ?"

ललिता माँ के पैर दबा कर उठी थी कि मुझे आ लिपटी। काम करने की उसे धुन थी, थकान जैसे उस के शरीर को होता ही न था। मैंने उसे मना किया—"मैं क्या बुढ़िया हूँ जो हाथ-पैर दबवाऊँ ?"

पर वह लिपटी जा रही थी। पीछा छुड़ाने को मैंने कहा—"अच्छा, हाथ-पैर नहीं दबवाती, गाना सुना।"

"क्या सुनाऊँ ? पक्का गाना आप को पसन्द है ?"

"अच्छा, पक्का गाना भी जानती है, पर बजाना भी जानती है कुछ ?"

ललिता का गला भर आया। नीची गरदन कर के, मेरी चादर का शल निकालते हुए ललिता ने कहा—"अब तो कुछ भी नहीं जानती बीबी जी ! पर कभी सब कुछ जानती थी।"

और व्यथा का भार न सँभाल कर, वह मेरे पैरों के पास लुढ़क गई। मेरा भी दिल भर आया और मैंने उसे अपनी तरफ़ खींच कर धोती से उस के आँसू पोंछ दिये।

पलङ्ग से उठ कर मैं भैया का वायलिन उठा लाई। ललिता वायलिन हाथ में लिये कई मिनिट गुमसुम बैठी उसे देखती रही; जैसे अपने अतीत की एक झाँकी ले रही हो।

मेरा मन ललिता के उर में उमड़ी आँधी में झकझोर हो उठा, पर जब उस ने अपने सधे हुए हाथ से पहली ही बार 'बो' वायलिन के तारों पर फेरा, तो मुझे रोमाञ्च हो आया। ऐसा वायलिन तो वाक़ई महावीर भी न बजाता था।

"गा भी तो कुछ, बजाने में तो महावीर से भी ज्यादा होशियार है।" ख़ुश होकर अम्माँ ने कहा।

मीरा के जीवन की सूनी पड़ी रे, सितार !
कितनी गहरी नींद में सोगई तारों की झङ्कार !